गीता-दर्शन

[५]

प्रवचनकार
अनन्तश्री स्वामी
अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री
श्रीमती सरला वसन्तकुमार बिरला



भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर प्राप्त कराये गये कागज पर मुद्रित

गीता-दर्शन

[५]

प्रवचनकार

अनन्तश्री स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

श्रीमती सरला वसन्तकुमार बिरला

गीता-दर्शन

[५]

अक्टूबर, ७९
दीपावली
सं. २०३६ वि.

प्रथम सस्करण--३५००

मूल्य--५.००

प्रकाशक :

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' २८/१६

बी. जी. खेर मार्ग

बम्बई–४००००६

फोन : ८१७९७६

मुद्रक :

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

आनन्दकानन प्रेस

सी-के० ३६/२०, दुण्ढिराज

वाराणसी–२२१००१

फोन : ६२६८३

२१५६

शुभाशीर्वाद

बिरला-परिवारका मानवताकी सेवामें विशेष योग रहा है। इसके द्वारा भारतवर्षके सर्वतोमुखी विकासमें प्रशंसनीय सहायता प्राप्त हुई है। ईश्वर-भक्ति, धर्म, दरिद्रनारायणकी उन्नति, विद्या, उद्योग, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं आध्यात्मिक प्रचार-प्रसारमें इसकी सेवा अनुपम है।

श्रीघनश्यामदास बिरलाके पुत्र एवं पुत्रवधू श्रीमती सरला वसन्तकुमार बिरला अनेक वर्षोंसे कलकत्तामें एवं अन्यत्र भी गीता, उपनिषद् आदिपर प्रवचनका आयोजन करते रहे हैं। उनसे देश-विदेशके अध्यात्मप्रेमी एवं विद्वान्, व्यापारी, विविध प्रकारके सम्मान्य वर्ग लाभ उठाते रहे हैं। उनका रेकार्ड कर लिया जाता है। उसीसे लिखकर अबतक 'गीता-दर्शन' नामसे तीन खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। उनका संकलन एवं सम्पादन श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठीने बड़े प्रेम एवं लगनसे किया है।

अब चतुर्थ एवं पञ्चम खण्ड प्रकाशित हो रहे हैं। इनका संकलन श्रीमती सरला बिरलाने बड़े मनोयोगसे किया है। आपको ज्ञात होगा कि एक घण्टेका प्रवचन संग्रह करनेमें छः-सात घण्टे लग जाते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन सुनना, दिनभर आतिथ्य-सत्कार एवं घरकी देखभाल करना सायंकाल पुनः प्रवचनका आयोजन एवं श्रवण करना तथा साथ ही साथ रातमें छः-सात घण्टे प्रवचन

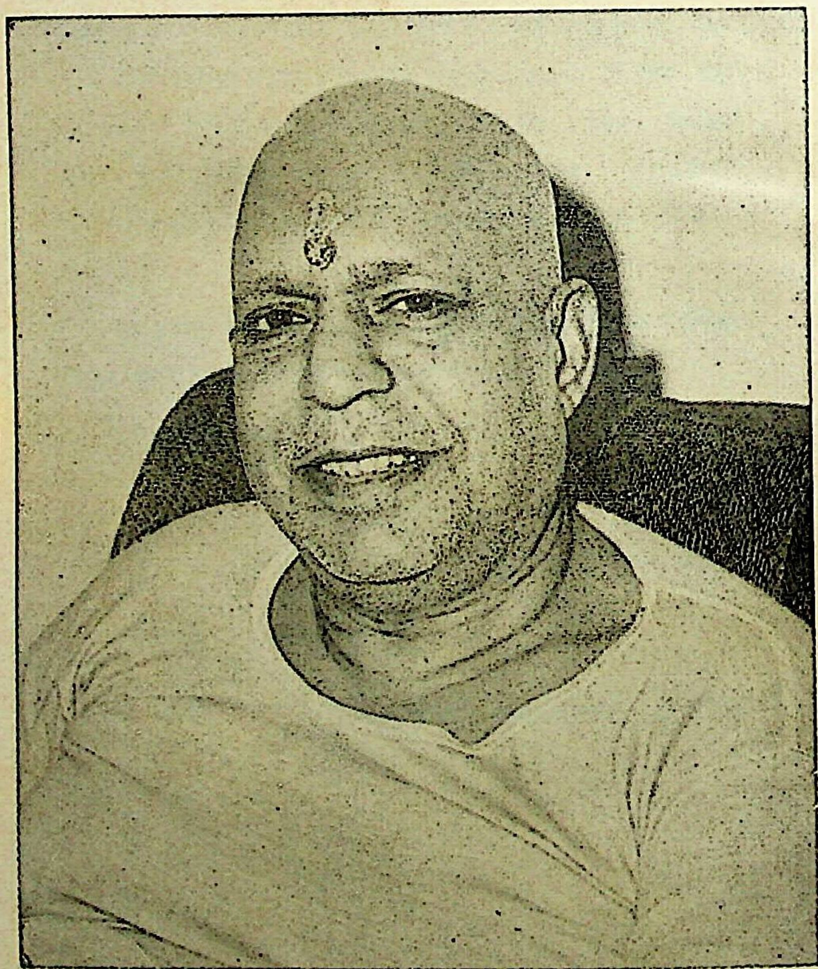
लिखना अत्यन्त परिश्रमसाध्य कठिन कार्य है। यह बिना सच्ची लगन एवं प्रेमके नहीं हो सकता। जब हम प्रातःकाल प्रवचन करनेके लिए बिरलापार्क पहुँचते तो पहले दिनका किया हुआ प्रवचन लिखित रूपमें हमारे हाथोंमें आजाता। उनके परिश्रम, लगन, शीलस्वभाव एवं गरीबोंकी सेवा जो नैसर्गिक रुचि है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

हम हृदयसे आशीर्वाद देते हैं कि वे दीर्घकालतक सपरिवार स्वस्थ प्रसन्न रहकर मानवताकी विशिष्ट सेवा करती रहें।

शेष, भागवत्कृपा।

दीपावली
का. कृ. चतुर्दशी
सं. २०३६
२०-१०-७९

—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती



स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

गीता-दर्शन

[५]

प्रवचन : १

गीता सुगीता है। आओ, हम गीताके संगीतका अभ्यास करें। जैसे गायक लोग संगीतका—उसके आलापका और उसकी राग-रागिनीका चिरकालतक बार-बार अभ्यास करते हैं। वैसे ही हमें भी गीता-संगीतका अभ्यास करना चाहिए।

गीता सुगीता कर्त्तव्या : अद्भुत प्रसङ्ग है। पहले वेदान्तका उपदेश अरण्यमें होता था। आरण्यक विद्या बोलते हैं—इसको। संस्कृतमें वेदान्तका नाम आरण्यक विद्या है। अधिकांश उपनिषद् आरण्यक हैं। अरण्यमें उनका प्रकाश हुआ है। अरण्य शब्दका अर्थ है जहाँ रण न हो। जहाँ लड़ाई-झगड़ा होता हो वहाँ वेदान्त सुननेको मिले तो किसको ग्रहण होगा ? वह लड़ाई-झगड़ेमें पड़नेवालोंकी—राग-द्वेष करनेवालोंकी विद्या नहीं है।

परन्तु गीताने इस परम्पराको छोड़ दिया। वह अरण्यमें नहीं, रणभूमिमें प्रकट हुई। एकान्तमें वेदान्त-चिन्तन करना एक विभाग है और रणभूमिमें वेदान्त-चिन्तन करना दूसरा विभाग है। यह दूसरा विभाग रिक्त था। श्रीकृष्णने इसकी पूर्ति कर दी। जरा सोचो तो सही, युद्धभूमिमें वेदान्त! कितना विरोधाभास है दोनोंमें?

एक बातपर आप ध्यान दें—हमारे वेदोंमें, ब्राह्मणोंमें, आरण्यकोंमें जो धर्मकी विद्या है वह यज्ञशालाकी प्रधानतासे है। यज्ञशाला बनाओ, हवन करो, वेदके मन्त्रोंका उच्चारण करो। उसमें कौन अधिकारी है कौन अनधिकारी—इसका ध्यान रखो। वेदमन्त्र शुद्ध बोले जावें। यज्ञकी सामग्री शुद्ध हो। यजमान, पण्डित योग्य होने चाहिए। पवित्र भूमि, पवित्र काल होना चाहिए। जब बड़ी पवित्रतासे यज्ञ करते हैं तब धर्म होता है। यह यज्ञशालाकी प्रक्रियावाले हैं। इसके अतिरिक्त तीर्थमें जाओ। दान करके लौटो तो धर्म होगा। अमुक दिन उपवास करो तो धर्म होगा। अमुक अनुष्ठान कर लो तो धर्म होगा। तात्पर्य यह कि धर्म यज्ञशाला और कर्मकाण्डमें सीमित हो गया। किन्तु गीताने उस धर्मको जीवनके कर्मक्षेत्रमें स्थापित कर दिया। यही गीताकी विशेषता है। युद्धभूमिमें वेदान्त और जीवनकी प्रत्येक क्रियामें, उसके सम्पूर्ण क्रिया-कलापमें धर्म!

अब आप दूसरी बातपर ध्यान दें। धर्मका अनुष्ठान होता था कामनापूर्तिके लिए अथवा अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए। यदि सकाम भावसे धर्म किया जाय तो कामनाकी पूर्ति होती है। आप जिस किसी कामनासे भी धर्मानुष्ठान करेंगे आपके सङ्कल्पमें बल आयेगा। क्योंकि धर्ममें कुछ छोड़ना पड़ता है, कुछ पकड़ना पड़ता है। कुछ देना पड़ता है, कुछ नियम ग्रहण

करने पड़ते हैं और वे बिना आत्मबलके पूरे नहीं हो सकते। जिसमें आत्मबल नहीं है वह कुछ छोड़नेके लिए चलेगा तो भी जब उसके मनमें लालचका, तृष्णाका उदय हो जायेगा तो वह छोड़ेगा नहीं। इसी तरह उसके मनमें कुछ नियम पालन करनेका विचार आयेगा तब वह मन निर्बल होनेके कारण नियमका पालन नहीं कर सकेगा। मनुष्यके मनोबलकी, आत्मबलकी वृद्धि ईश्वर-विश्वास और मर्यादा-पालनसे, धर्मानुष्ठानसे होती है। जो अपने नियमका पालन करनेके लिए कष्ट सहनेको तैयार नहीं है, वह निर्बल रहेगा। जो कष्ट सहकर भी अपनी मर्यादाका पालन करता है, उसके आत्मबलकी वृद्धि होती है। निःसन्देह बड़ा बलवान् है वह व्यक्ति जो विपरीत परिस्थितियोंमें भी धर्मानुष्ठान-का, नियमका, मर्यादाका परित्याग नहीं करता।

परन्तु धर्मानुष्ठानको केवल एकादशी आदि व्रतोंतक अथवा काशी-मथुरा आदि तीर्थोंतक अर्थात् अमुक कालसे अमुक काल-तक या अमुक धर्मस्थानसे अमुक धर्मस्थान तक सीमित कर देते हैं तो उसका फल भी सीमित हो जाता है। धर्म असीम होना चाहिए। वह केवल मन्दिरमें न हो, घरमें भी हो। वह केवल यज्ञशालामें न हो, हमारे प्रत्येक व्यवहारमें भी हो। गीताने यही किया। इसने धर्मकी सीमाको देश, काल एवं समाजकी मान्यताओंसे ऊपर उठाकर सब जगह व्यापक बना दिया और ज्ञानके क्षेत्रको भी अरण्यमें-से जंगलमें-से, अयोध्यामें-से बाहर निकालकर सर्वत्र स्थापित कर दिया। अयोध्याका अर्थ भी वही होता है जो अरण्य शब्दका होता है। अयोध्या शब्दकी ब्युत्पत्ति है **नास्ति योध्यो यस्याः**। जहाँ युद्ध करनेके लिए कोई बाकी ही नहीं है, जहाँ युद्ध है ही नहीं, जिससे कोई युद्ध कर ही नहीं सकता, उसका नाम होता है—अयोध्या।

गीताने धर्मको एकान्तसे उठाकर हमारे घरमें, सड़कपर,

दूकानमें, व्यापार-व्यवहारमें और ज्ञानको उसके उपदेश-स्थल अरण्यसे निकालकर युद्धभूमिमें उपस्थित कर दिया। यह कहावत तो पहलेसे प्रसिद्ध है कि **घोड़ेके रकावमें पाँव और ब्रह्मज्ञान!** इसका मतलब है कि ब्रह्मज्ञान घोड़ेपर चढ़ते समय भी हो सकता है और तीर चलाते समय भी हो सकता है।

तो गीतामें मुख्य बात यह आयी कि **मामनुस्मर युद्धय च।** यह आठवें अध्यायका महावाक्य है। इसका अर्थ है 'मेरा स्मरण करो और युद्ध करो', 'युद्ध करो और मेरा स्मरण करो।' यहाँ हृदयमें, अन्तरङ्गमें अनुस्मृतिकी प्रधानता है और बहिरङ्गमें युद्धकी प्रधानता है। **मामनुस्मर युद्धय च।** में जो 'च' है वह युद्धको गौण कर देता है और **मामनुस्मर**को मुख्य कर देता है। लड़ते भी चलो और मेरा स्मरण भी करते चलो।

अब आपको गीताके आठवें अध्यायकी पूर्वपीठिकाकी भूमिका-की चर्चा सुनाते हैं। सातवें अध्यायमें भगवान्‌के समग्र रूपके वर्णनकी प्रतिज्ञा है। जैसे राजा लोग अपने महलमें रहते हैं और उनके कर्मचारी लोग उनका राजकाज सम्हालते हैं। वैसे ही भगवान् भी वैकुण्ठमें बैठते हैं और उनके कर्मचारी उनका राजकाज करते हैं। भगवान् यदि जीव हो, मनुष्य हो और संसारकी देखभाल करनेवाला हो तो यही होगा कि वह एक जगह रहेगा। उसके रहनेके स्थानका नाम वैकुण्ठ रखो या ब्रह्मलोक चाहे साकेत या गोलोक, बात एक ही है। यदि उसके एक जगह रहनेकी बात न जँचे तो भगवान् निराकार रूपसे सब जगह रहता है, ऐसा मान लो। यह भी न जँचे तो जितनी क्रिया हो रही है, उसमें प्रेरक रूपसे भगवान् ही बैठा है, यह बात मान लो। गीताके सातवें अध्यायमें इस प्रसंगको अद्भुत रीतिसे प्रतिपादित करते हुए यह बताया गया है कि भगवान्‌का जो रूप

है, वह समग्र है। समग्र है माने निराकार, निर्गुण ब्रह्म—भगवान् सम्पूर्ण जीवोंके रूपमें विद्यमान है। इस सृष्टिमें जो क्रिया-कलाप हो रहा है वह भगवान्, जो पञ्चभूत है वह भगवान्। इनमें जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि-संचालन, पोषण और संहार करते हैं वे भगवान्। इतनी उदार दृष्टिसे भगवान्का, परमेश्वरका वर्णन है कि उसमें एक व्यक्ति भगवान् बनकर बैठ जाय—इसकी गुंजायश नहीं है। उदाहरणके लिए देखें। भगवान् कहते हैं कि **मत्तः परतरं नास्ति** मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। एक परा प्रकृति है और दूसरी अपरा प्रकृति है। दोनोंका कारण मैं हूँ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥७.४

यह अष्टधा अपरा प्रकृति है। इससे परे जीव प्रकृति है। संसारमें जो कुछ भी दिखायी पड़ रहा है। वह परा प्रकृति और अपरा प्रकृति है। इन सबका कारण मैं एक हूँ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। ७.६

मुझसे ही सारी सृष्टि उत्पन्न होती है और मुझमें ही सारी सृष्टि लीन हो जाती है।

अतः आप गीताके इन वचनोंको ध्यानमें रखिये और ईश्वरको ढूँढनेके लिए सृष्टिके आदिमें पहुँचनेकी कोशिश मत कीजिये। क्योंकि सृष्टिका आदि आपकी पकड़में कभी नहीं आवेगा। यह असम्भव है। अशक्यानुष्ठान है कि किसी व्यक्तिकी बुद्धि सृष्टिके आदिका साक्षात्कार कर सके। काल अनादि है। आप ईश्वरको ढूँढनेके लिए वहाँ मत जाइये। यह मत सोचिये कि जहाँ सृष्टि नहीं रहेगी वहाँ परमेश्वर मिलेगा। क्योंकि काल अनन्त होता

है। कालका आदि, अनादि और कालका अन्त अनन्त होता है। आप कभी प्रलयावस्थाकी अनुभूति नहीं कर सकते और न सृष्टिके प्रारम्भकी अनुभूति कर सकते हैं। ईश्वरको तो यहीं ढूँढना पड़ेगा। अभी ईश्वर मिलेंगे तो सब समय मिलेंगे। यहीं ईश्वर मिलेंगे ता सब जगह ईश्वर मिलेंगे। यदि इसी रूपमें ईश्वर मिल जावेंगे तो फिर कहना ही क्या है? फिर तो मौत भी ईश्वरके रूपमें दिखायी पड़ेगी।

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः। ७.३०

आठवाँ अध्याय यही बतानेके लिए आया है कि मौत भी आपको भगवान्‌से अलग नहीं कर सकती। मृत्युमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह आपको परमेश्वरसे, अलग कर दे। चलते-फिरते परमेश्वर, बोलते-चुप होते परमेश्वर खाते-पीते परमेश्वर, हँसते-गाते परमेश्वर, जीतते-हारते परमेश्वर, सब समय परमेश्वर ही परमेश्वर। परमेश्वरको ले जाकर एक कोनेमें डाल देना—यह गीताका अभिप्राय नहीं है। ईश्वर निराकार है, यह भी एक पन्थ है। ईश्वर साकार है, यह भी एक पन्थ है। ईश्वर किसी लोकमें रहता है, यह भी एक पन्थ है। हम पन्थकी नहीं सिद्धान्तकी बात करते हैं। सबसे बढ़िया बात यही है कि हम इसी समय ईश्वरको ढूँढकर निकाल लें—पहचान लें कि यही ईश्वर है।

श्रीकृष्णने सातवें अध्यायके अन्तमें आठवें अध्यायकी भूमिका बाँधी। इसको प्रश्न बीज बोलते हैं, जैसे किसी अङ्कुरके लिए बीजका होना आवश्यक है, इसी प्रकार आठवें अध्यायका अङ्कुर निकलनेके लिए सातवें अध्यायके अन्तमें बीज है।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ७.२९,३०

आप स्वभावतः संसारके दुःखसे छूटना चाहते हैं। ऐसा कोई प्राणी नहीं होता, जो दुःखसे छूटना नहीं चाहता। पानेकी इच्छा सबके मनमें होती है। जहाँ-जहाँ दुःख होगा वहाँ-वहाँसे छुटकारा पानेकी इच्छा होगी ही। हमने एक चींटीको छूनेकी कोशिश की तो वह भगी। एक मच्छरकी ओर हाथ ले गया तो वह उड़ गया। एक खटमलको पकड़ना चाहा तो वह पकड़में नहीं आया—एक दराजमें जा छिपा। क्यों? इसलिए कि चींटी, मच्छर, खटमल आदि सभी प्राणी दुःखसे छूटना चाहते हैं। आप सब लोग भी मोक्ष चाहते हैं। जहाँ-जहाँ दुःख है वहाँ-वहाँसे हटना चाहते हैं। इसमें कम्युनिज्म, सोशलिज्मका कोई फरक नहीं होता। नास्तिकको भी दुःखसे छुटकारा चाहिए। चार्वाकको भी दुःखसे छुटकारा चाहिए। इसीलिए मोक्षको पुरुषार्थ कहते हैं। मोक्ष माने छुटकारा—मुक्ति। आप स्वयं सोचये कि छूटना चाहते हैं या नहीं? निश्चय ही आप दुःखसे छूटना चाहते हैं। जड़तासे छूटना चाहते हैं। आप जड़तासे नहीं छूटेंगे तो जन्मसे, वुढ़ापेसे, रोगसे, मृत्युसे, कैसे छूटेंगे? क्योंकि ये सारी अवस्थाएँ जड़तामें ही हैं। जन्म भी जड़में, रोग भी जड़में, बुढ़ापा भी जड़में, मृत्युभी जड़में। जड़ता ही बेहोशी है और आप बेहोशीसे छुटकारा चाहते हैं। वैसे आजकल कई लोग बेहोशीके लिए नशीली चीजें खाते-पीते हैं। परन्तु उनको मालूम रहता है कि इससे जो बेहोशी आयेगी, वह थोड़ी देरके लिए आयेगी। आप भी किसी दर्दसे बचनेके लिए बेहोशीका इञ्जेक्शन लगवाते हैं या गोली खाते हैं परन्तु आपको मालूम होता है कि उससे जो बेहोशी होगी वह थोड़ी देरके लिए। यदि आपका यह ख्याल हो कि आपको हमेशाके लिए बेहोशी हो जायेगी तो आप उस

इञ्जेक्शन या गोलीका सेवन बिल्कुल नहीं करेंगे। हमेशाके लिए जड़ता कोई नहीं चाहता। फिर जो चीज दो दिनके लिए आवे वह तो यही कहावत चरितार्थ करती है कि 'चार दिनकी चाँदनी फिर अँधेरी रात।' आप चार दिनोंकी चाँदनीसे भी छूटना चाहते हैं क्योंकि उसमें भविष्यका यह दुःख है कि वह फिर जल्दी ही बिछुड़ जायगी।

तो जड़तामें अपनी बुद्धिकी—ज्ञानकी हानि है। दुःख हमको सर्वथा अप्रिय है। हम अप्रियसे छूटना चाहते हैं। अज्ञानसे छूटना चाहते हैं। मृत्युसे छूटना चाहते हैं। दुनियामें सब ऐसा चाहते हैं इसलिए हम लोग ऐसा कहते हैं कि आप नित्यको चाहो, प्रकाश-को चाहो, ज्ञानको चाहो, आनन्दको चाहो। तब हम आपको विधान नहीं करते—आज्ञा अथवा उपदेश नहीं करते अपितु इसलिए कहते हैं कि आप सचमुच दुःखसे छूटना चाहते हैं। जड़तासे छूटना चाहते हैं। देखिये आप अपनी प्रगति चाहते हैं न? यह प्रगति क्या है? प्रगति माने जड़तासे छूटना। आगे बढ़ना। उन्नति अर्थात् ऊपर उठना। उत्थानका नाम है उन्नति और आगे बढ़नेका नाम है प्रगति। आजकल प्रगतिशील शब्दका बहुत प्रयोग होता है। इसके प्रयोक्ताओंका तात्पर्य यही होता है कि वे अपने स्थानके आगे बढ़ना चाहते हैं। जड़ता उनको पसन्द नहीं है। यह बात दूसरी है कि जो लोग किसी पदकी कुर्सीपर बैठते हैं वे इससे उठना नहीं चाहते। उन्हें भी अनित्य कुर्सी नहीं चाहिए। जो कुर्सी आज मिले और कल उलट जाय उसका क्या ठिकाना। पर लोग बैठते उसीपर हैं।

सारांश यह कि आप अनित्यतासे, जड़तासे, दुःखसे बचना चाहते हैं। इसके लिए उपाय क्या है? श्रीकृष्णने बताया : **मामाश्रित्य यतन्ति ये।** भगवान्‌का आश्रय लो और यत्न करो।

यहाँ भी दो बातें हैं। एक : मामाश्रित्य, दूसरी : यतन्ति ये। आश्रय रखो बड़ेका। महान् है, वही आश्रय लेने योग्य है कैकेयीने मन्थरा-की शरण ली—बेचारी मारी गयी। दशरथने कैकेयीकी शरण ली—बेटेका वियोग हुआ। स्वयं मर भी गये। शरण अथवा आश्रय छोटेका नहीं चाहिए। आश्रय लेने योग्य वही होता है जो हमारी रक्षा कर सके। हमारे अभीष्टकी पूर्ति कर सके। इसके लिए परमेश्वरका आश्रय लेना सबसे उत्तम है।

आश्रय लेकर निकम्मा नहीं होना चाहिए। यह नहीं कि हम तो भगवान्के सहारे बैठ गये। नहीं, स्वयं भी प्रयत्न करो। अपना हाथ-पाँव पीटो। तुम्हारे पास जितना बल है, उतना तुम लगाओ। ईश्वरका बल तुम्हारे जीवनमें प्रकट हो जायेगा। ईश्वरका बल प्रकट करनेका उपाय ही यह है कि हम अपने बलको लगानेमें कृपणता न बरतें; कञ्जूसी न करें। हमारे पास केवल पाँच रुपये हैं, उनको तो हम दबाकर रखें और सेठसे कहें कि तुम पाँच हजार हमें और दे दो। नहीं, अपने पाँच भी लगाओ, सेठके पाँच हजार भी लगाओ पर चोरी करके नहीं, छिपाकर नहीं बिल्कुल खुले लगाओ। अपने बलका पूरा प्रयोग करो। जितनी शक्ति है, जितना सामर्थ्य है, जितनी बुद्धि है, जितनी प्रतिभा है उसका उपयोग करो। जो कर सकते हो करो। पूर्णरूपसे प्रयत्न करनेपर भी जो न हो सकता हो तो उसके लिए ईश्वरके बलका आवाहन करो।

मामाश्रित्य यतन्ति ये—में 'आश्रित्य' असमाप्त क्रिया है। तात्पर्य यह है कि आश्रय लेते चलो—लेते चलो और प्रयत्न करो। यतन्ति मुख्य क्रिया है। मनुष्यको अपने पौरुषका परित्याग नहीं करना चाहिए। यदि मनुष्य अपने पौरुषको छोड़ देता है तो ईश्वरसे छूट जाता है। गीतामें यह बात बतायी है कि भगवान्

मनुष्यके शरीरमें पौरुष रूपसे रहते हैं। **पौरुषं नृषु।** मनुष्यके अन्दर जो पुरुषाकार है—पौरुष है, प्रयत्न है वही भगवान् है। यदि आप अपनी ओरसे प्रयत्न कर रहे हैं तो समझें कि आपके जीवनमें भगवान् प्रकट हो रहे हैं। यदि आपने अपनेको मुर्दा कर दिया—अपना पौरुष छोड़ दिया तो भगवान्के बलको प्रकट करने-का जो मार्ग था वह अवरुद्ध हो गया—रुक गया। देखते चलो, सूर्यकी रोशनीकी सहायता लेते चलो। अपने ज्ञानका प्रयोग करो, भगवान्का ज्ञान आने दो। इसके लिए भगवान्ने सात बातें बतायी हैं।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्। ७.२९
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ७.३०

ये जो सात बातें हैं इनके लिए आप सात रूपमें ईश्वरको जानें। इनको जाननेके बाद ऐसी कोई चीज नहीं रह जायगी जो परमेश्वरका रूप न हो। ये सातों परमेश्वरके रूप हैं। ब्रह्म परमात्माका रूप है और आत्मा सबके शरीरोंमें रहनेवाला आत्मदेव, जीव-समुदाय, परा प्रकृति यह भी परमात्माका स्वरूप है—

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।

शरीर अलग-अलग हैं और जीव अलग भोक्ता, अलग संसारी, अलग परिच्छिन्न मालूम पड़ते हैं। परन्तु सब जीवात्माओंमें आत्मा एक है। परा प्रकृति है यह। वह कौन है? परमात्मा। **कृत्स्नं अध्यात्मम्**—अध्यात्म माने जीव-समुदाय। यह जो कर्म हो रहा है सृष्टिमें उसीसे नयी-नयी उत्पत्ति होती है। आगे प्रश्न है, इसलिए भगवान्ने उत्तर दिया। ब्रह्म क्या है? जीव क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है? अधिदैव क्या है? अधियज्ञ

क्या है ? और मृत्युके समय भी परमेश्वरका दर्शन हो वह क्या है ?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥८.२

आप अपनेको घड़ा मानोगे तो फूटोगे और मिट्टी मानो तो नहीं फूटोगे। घड़ेमें जो आकाश है वह मानोगे तो छोटे-से हो जाओगे और यदि घड़ेकी दीवार आपको छोटा नहीं बनाती है तो आप अखण्ड आकाश हो जाओगे। घटाकाशमें शराब भी भरेगा, गङ्गाजल भी भरेगा। लेकिन घड़ेकी दीवारको एक बार मनसे अलग करके आकाशकी पूर्णताको देखो तो उसमें न शराब लगेगी, न दूध लगेगा, न गङ्गाजल लगेगा। वह आकाश तो सर्वथा निर्लेप है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको कहते हैं कि 'तू अपने मनको युक्त कर।' युक्त करनेका अर्थ यह है कि हमारे जीवनमें सुछ संयम हो, कुछ नियम हो, कुछ मर्यादा हो। यह सृष्टि कभी स्थूलताकी ओर प्रवाहित होती है और कभी सूक्ष्मताकी ओर प्रवाहित होती है। जब स्थूलताकी ओर जायेगी तो आप पत्थर हो जायेंगे। सूक्ष्मताकी ओर जायेगी तो आप ब्रह्म हो जायेंगे। अपने मनको बाहर बहनेसे बचाइये। चार बातोंपर ध्यान रखिये। आप क्या भोगना चाहते हैं ? मर्यादाके अन्दर या मर्यादाके बाहर ? यदि मर्यादाके बाहर गये तो गये। फिर तो कहीं रोक-टोक नहीं। आप क्या इकट्ठा करना चाहते हैं ? सबकी जेबका पैसा आपकी जेबमें चला आवे, यह चाहते हैं ? सारी धरतीके आप मालिक होना चाहते हैं ? किस-किस बातका अभिमान करना चाहते हैं ? क्या करना चाहते हैं ? क्या बोलना चाहते हैं ? एकाग्र मनसे इन बातोंपर विचार करें। यदि आपके मनमें भोगकी इच्छा है तो उसको एक सम्प्रदाय दीजिये, एक पन्थ दीजिये,

एक मार्ग दीजिये। नहीं तो भोगते-भोगते आपका अन्त हो जायेगा।

भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।

भोग तो कभी पूरे होंगे नहीं। आपका जीवन पूरा हो जायेगा। आप असमर्थ हो जायेंगे। भोगका सामर्थ्य भी आपमें नहीं रहेगा यदि आप भोगको नियमित नहीं करेंगे। खाते जायँ—खाते जायँ तो अजीर्ण होगा, बीमार पड़ेंगे और मर जायेंगे। भोजनमें मर्यादा चाहिए। आप इकट्ठा करते जायँ, उसको बाहर न निकालें, बहने न दें और चाहें कि सारा पानी हमारे तालावमें इकट्ठा हो तो आपका तालाब फूट जायगा। आप केवल काम करते जायँ—करते जायँ और विश्राम न करें, सोये नहीं तो आपकी शक्तिका लोप हो जायेगा। इसमें भी संयम चाहिए। मनमें जो भी आये वह बोलने लगे तो क्षणभरमें पागल हो जायेंगे। सोचकर बोलना चाहिए। भोगमें मर्यादा रखनी चाहिए। सभी इन्द्रियोंके भोगमें होनी चाहिए। उच्छृङ्खलता नहीं होनी चाहिए। नहीं, तो आप असामाजिक प्राणी हो जायेंगे। आपके जीवनमें पशुत्वका विकास हो जायेगा।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ ६.१७

गीता कहती है कि आप यदि दुःखसे छूटना चाहते हैं तो आपका आहार युक्त हो, विहार युक्त हो, आपकी कर्मचेष्टा युक्त हो, आपका सोना और जागना युक्त हो, आपका मन युक्त हो।

यदि आप एकाग्र मनसे, युक्त मनसे परमात्माका चिन्तन नहीं करेंगे तो आपको सफलता नहीं मिलेगी। आप उच्छृङ्खल हो

जायेंगे। इसलिए नियतात्मा होना चाहिए, युक्तचित्त होना चाहिए। युक्तचित्त होकर परमेश्वरको जानना चाहिए।

मनमें प्रश्न आना भी आवश्यक है। भगवान्ने बच्चेको कैसी जिज्ञासा दी है। छोटा-सा बच्चा पूछेगा कि यह कौन-सा पेड़ है? यह कौन-सी चिड़िया है? इसे क्या कहते हैं बाबा? बच्चेके मनमें जिज्ञासा होती है। यह ईश्वरकी देन है। ईश्वरकी नियामत है। कुछ पूछकर जानते हैं। छोटे-से बच्चेके मुँहमें शक्कर पड़े तो देख लेता है कि शक्कर कैसी है और उसको बार-बार शक्कर खानेकी इच्छा होती है। लेकिन एक बार उसके मुँहमें कोई कड़वी चीज डाल दो तो थू-थू-कर थूक देगा और फिर उसे मुँहमें नहीं डालेगा। बच्चा बार-बार आगमें हाथ डालनेके लिए दौड़ता है लेकिन जब आँच लग जाती है तो उसे देखकर डर जाता है। मनुष्य कुछ तो खुदके अनुभवसे सीखता है और कुछ बड़े बूढ़ोंके अनुभवसे शिक्षा प्राप्त करता है। मनुष्यके मनमें जो जिज्ञासा है—जाननेकी इच्छा है (ज्ञातुं इच्छा = जिज्ञासा) यह स्वाभाविक है। किसी विषयकी जिज्ञासा जाग्रत होनेपर ही उसकी व्याख्या समझमें आती है। बढ़िया अध्यापक वही होगा जो पहले विद्यार्थीके मनमें जाननेका कौतूहल, जाननेकी इच्छा उत्पन्न कर देगा और जब विद्यार्थी स्वयं जानेके लिए उत्सुक हो तब उसको उसकी जिज्ञासाका विषय बताये। फिर विद्यार्थीको विषय-ग्रहण हो जायेगा।

हमारे एक मित्र बड़े वेदान्ती थे। उन्होंने कहा—मैं 'खण्डन-खण्ड-खाद्य' पढ़ूँगा। यह वेदान्तका उच्चकोटिका ग्रन्थ है। मैंने वह ग्रन्थ उनके हाथमें दे दिया। फिर, वे एक दिन-दो दिन पढ़कर बोले कि इसमें तो उन प्रश्नोंका समाधान है जो मेरे मनमें नहीं हैं। अगर मेरे मनमें ये प्रश्न होते तो उनका इसमें जो समाधान है वह ग्रहण हो जाता। जब किसी भी श्रोताके

मनमें कोई प्रश्न पैदा हो और फिर उसका उत्तर दिया जाय तो वह उसे हमेशाके लिए पहचान लेगा—समझ लेगा। किन्तु यदि प्रश्न ही पैदा न हो तो उसका उत्तर देनेसे क्या लाभ ?

भगवान् श्रीकृष्ण एक अच्छे अध्यापक भी हैं। अध्यापक ही नहीं अध्येता भी हैं। है न अद्भुत बात ? श्रीकृष्ण भी पढ़नेके लिए गुरुकुलमें जाते हैं। एक ओर तो हम बोलते हैं कि वे भगवान् हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, आनन्दघन हैं, अविनाशी हैं, सत्य हैं, नित्य हैं, परन्तु दूसरी ओर देखते हैं कि गुरुके घरमें पढ़नेके लिए जाते हैं। उन्होंने अर्जुनके मनमें प्रश्न पैदा कर दिया—किं तद् ब्रह्म ? जिन्होंने गीताका सम्पादन किया उन्होंने लिखा 'अर्जुन उवाच' अर्थात् यह अर्जुनका वचन है। सम्पादनकी दृष्टिसे ऐसा ही बोलना ठीक है कि आगे जो कहा गया है वह अर्जुनका वचन है। 'अर्जुन उवाच' पद क्रिया-विवक्षित नहीं धात्वर्थ-विवक्षित है।

अब अर्जुनके प्रश्नमें जो पुरुषोत्तम शब्दका प्रयोग है किं पुरुषोत्तम—इसके अर्थपर विचार करें। एक पुरुष होता है, दूसरा पुरुषोत्तम होता है। यहाँ अर्जुन पुरुष है और श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम माने पुरुषोंमें बड़े। लोकदृष्टिसे भी पुरुषोत्तम होता है, तत्त्वदृष्टिसे भी पुरुषोत्तम होता है और अधिभूत दृष्टिसे भी पुरुषोत्तम होता है। जैसे आप लोगोंमें कई अर्थ-सिद्ध हैं। यह अर्थ-सिद्धि तब मालूम पड़ती है जब उसके भोगकी इच्छा गौण हो जाती है। आप अपने अर्थमें इतना सुख अनुभव करते हैं कि खाने-पीनेकी चिन्ता नहीं रहती है। अर्थ-सिद्धि है माने आप उसमें तृप्त हैं। आपको कहीं किसीके पास जानेकी जरूरत नहीं। इसी तरह जो कामसिद्ध होते हैं वे अपने भोग-रागमें इतने तृप्त रहते हैं कि घरमें धन हो तो उड़ा दें, धर्मको ताकपर रख दें। उनको मोक्षकी जरूरत नहीं, वे भोग-सिद्ध हैं।

यदि हम लोग चाहें कि ये हमारे पास आकर शिक्षा ग्रहण करें तो यह हमारी गलती है। उनकी गलती नहीं है। वे तो अपने आपमें तृप्त हैं। इसी प्रकार जो आचार-सिद्ध या धर्म-सिद्ध हैं वे अपने हाथसे बनाकर खाते हैं, सिला कपड़ा नहीं पहनते। यज्ञशालामें होम करते हैं। वे हमलोगोंको प्रणाम नहीं करते क्योंकि उनको इसकी जरूरत नहीं। वे अपने आचारमें, धर्ममें सिद्ध हैं। जो ज्ञान-सिद्ध होते हैं वे सोचते हैं कि हमको क्या जरूरत है किसी धनीकी ? क्या जरूरत है किसी भोगीकी ? क्या जरूरत है यज्ञशालामें जाकर हवन करनेकी ? वे अपने आपमें, ज्ञानमें तृप्त रहते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारकी सिद्धियाँ होती हैं, सिद्ध होते हैं। उनमें जब एक चाहे कि दूसरा हमारे पास आवे—ज्ञानी चाहे कि धनी हमारे पास आवे, धनी चाहे कि ज्ञानी हमारे पास आवे तो समझना कि दोनों अधूरे हैं। अगर ज्ञानी चाहता है कि धनी हमारे पास आवे तो वह अपने ज्ञानमें तृप्त नहीं है। धनीसे तृप्त होना चाहिए। इसी तरह दूसरे सिद्धोंकी बात समझ लें। तो मनुष्यको होना चाहता है—अपने आपमें सन्तुष्ट—तृप्त।

अर्जुनकी जिज्ञासा देखिये—किं तद् ब्रह्म, किमध्यात्मम् यही उसका रूप है। बड़ा लालच है उसकी इस जिज्ञासामें। इसका समाधान जान लेनेपर आप जरा-मरणसे, जन्मसे, रोग और मृत्युके दु:खसे भी मुक्त हो जायेंगे। आइये, हमारी दूकानका जो सौदा है, उसको आप एक बार लीजिये तो सही ! उसका नमूना देखिये। यह विज्ञापन है। आपको जो दिनभरमें सौ बार शोक आता है, सौ बार भय आता है, आप जन्मनेको डरते हैं, मरनेको डरते हैं, कमाई छूट जानेकी चिन्तासे डरते हैं। आप डरते हैं कि पत्नी धोखा दे देगी। हमारा पुत्र बेवफा हो जायेगा। इस तरहके जो

हज़ारों भय लगे हुए हैं उन सब भयोंसे आप मुक्त हो जायेंगे। आप समझिये कि ब्रह्म क्या है ?

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

भगवान्‌के संकल्पसे कैसे सृष्टि चल रही है ? सूर्य चन्द्रमाको कौन चला रहा है ? तारागणको कौन धारण करता है ? यह धरती अपने चक्रमें कैसे घूमती है ? वह अधिष्ठान क्या है, जिसमें यह सब हो रहा है ? वह मैं क्या है जो कर्ता बना डोलता है ? अधिभूत क्या है ?

अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।

इसमें जो अलग-अलग विभागके अध्यक्ष हैं वे तो अधिदैवत हैं और सम्पूर्ण विश्वसृष्टिका जो मालिक है वह परमेश्वर है। वह स्थान कौन-सा है जिसमें यह सब हो रहा है ? यह मैं कौन-सा है जो सबको देख रहा है। यह सृष्टिकी मशीन किसके संकल्पसे चल रही है ? यह जो सामग्री है, मशाला है उसके रूपमें कौन है ? इसके एक-एक विभागके मालिक कौन हैं ? सबका अन्तर्यामी नियन्ता कौन है ? वह कभी आँखोंसे ओझल न हो, हमेशा दिखायी पड़े।

प्रयाणकालेऽपि—अर्थात् औ समय तो कहना ही क्या मौतके समय भी दिखायी पड़ता रहे। सब दीखे, कहीं अज्ञानान्धकार हो ही नहीं।

असतो मा सद्‌गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●

प्रवचन : २

युद्धभूमिमें, जहाँ दोनों ओरसे शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग होने ही वाला है, वहाँ बीचमें बैठकर ब्रह्मकी चर्चा करनेवाले महापुरुष कितने अद्भुत होंगे; इसपर विचार कीजिये। आप लोग किसी व्यापारके कामसे कार चलाते हो और आपका मन उस व्यापार-कार्यमें उलझा हुआ हो तो क्या आप उसके बोझसे मुक्त होकर ब्रह्मचर्चा कर सकते हैं ? कितना वशमें होगा अर्जुनका मन, उसमें कितनी एकाग्रता होगी : जो सामने युद्ध-जैसा कठोर कर्त्तव्य उपस्थित होनेपर भी ब्रह्मचिन्तनमें संलग्न है। अर्जुनको कितनी

निश्चिन्तता होगी ! युद्धकी तो कोई परवाह ही नहीं है। युद्धमें जीतके सम्बन्धमें तो कोई शंका ही नहीं है। वह जानता है उसे विश्वास है कि यदि युद्ध होगा तो वह जीतेगा। उसके सामने प्रश्न केवल विवेकका है कि वह जो काम करने जा रहा है, वह ठीक है या नहीं और ब्रह्मतत्त्वकी अनुभूतिमें कहाँतक सहायक है ? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब विचार प्रारम्भ हो गया तब उसे बीचमें नहीं छोड़ना, अपितु अन्ततक, ब्रह्मपर्यन्त पहुँचा देना। जो विचार बीचमें रह जाता है वह तो अधूरा है। विचार करना तो पूर्णतापर्यन्त करना।

तो, यह, अरण्य नहीं है, रणभूमि है। जैसा कि बताया जा चुका है अरण्य शब्दका संस्कृतमें सीधा अर्थ होता है, शरण लेने योग्य—अभी गतौ। घर गृहस्थीसे मुक्त होकर जिस जंगलकी शरण लेते हैं और जहाँ वेदान्त-विचार करते हैं, आरण्यक विचार करते हैं, उसका नाम अरण्य होता है। वहाँ रण नहीं होता। अरण्यका दूसरा अर्थ यह हुआ कि अब रण नहीं होता। जहाँ वादविवाद है, कोलाहल है, मारपीट है, वहाँ वेदान्त-विचार नहीं होता। परन्तु यहाँ तो आप रणभूमिमें बैठकर वेदान्त-विचार कर रहे हैं। जिज्ञासु भी कोई त्यागी, संन्यासी नहीं है। उसके हाथमें शस्त्रास्त्र है और हृदयमें अपने ममतास्पद लोगोंको देखकर मोह है। वह मोहकी निवृत्तिके लिए प्रवृत्त हुआ, परन्तु उसको ब्रह्मचर्चामें इतना रस आया—इतना रस आया कि रणभूमि भूल गयी, मोहास्पद भूल गये और ब्रह्मचिन्तन प्रारम्भ हो गया। आपके मनमें जैसे सुखकी जिज्ञासा होती है कि हमें सुख कहाँ मिलेगा, कब मिलेगा और कैसे मिलेगा, वैसे ही सत्यकी जिज्ञासा होती है कि नहीं ? अवश्य ही आपको सुखकी इच्छा होती है, वह चाहे ज्ञानसे मिले, चाहे अज्ञानसे ! चाहे सत्यसे मिले, चाहे असत्यसे। वेद, शास्त्र, धर्मकी रीति यह है कि आप

सुखको चाहें और प्राप्त भी करें, परन्तु असत्यसे नहीं, सत्यसे। आप अज्ञानमें सुखी न हों ज्ञानसे सुखी हों, आँख बन्द करके खुश न हों, खुली आँखसे खुश हों। तो जब अर्जुनके मनमें जिज्ञासा जागृत हुई तो उसने प्रश्न करनेमें संकोच नहीं किया। कई लोगोंके मनमें जाननेकी इच्छा तो होती है, परन्तु उन्हें पूछनेमें संकोच होता है। उस प्रश्नगत संकोची स्वभावको कबतक दबाओगे? एक-न-एक दिन तो वह उभरकर रहेगा। इसलिए उसका समाधान कर लेना चाहिए। प्रश्न भी जीवनका एक स्वाभाविक अंग है, जैसा कि बच्चेके जीवनमें होता है। प्रश्न स्वयं भी जगता है और जगाया भी जाता है। यहाँ भगवान्ने अर्जुनके मनमें प्रश्न जगा दिया है—

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥

इस प्रश्नमें अर्जुन रस ले रहे हैं। यह सत्यका रस है, ज्ञानका रस है। किन्तु यह रस द्रव्यका नहीं है, भोगका नहीं है, कर्मका नहीं है। यह ऐसा रस है जो जिज्ञासुमें होना ही चाहिए। आप अपनेको तौलिये और देखिये कि आपको स्वाद कहाँ आता है? सोनेमें आता है? भोजनमें आता है? काममें आता है? प्रेममें आता है? विचारमें आता है? शान्तिमें आता है? आपका रस, आपका स्वाद आपके जीवनमें कहाँ रखा है?

तो, प्रश्न हुए सात। अर्जुनने सातों बातोंको ग्रहण किया। उसको एक नयी बात मालूम पड़ी। जिसको थोड़ी-सी सुनी हुई बात नयी मालूम पड़ती है, उसको और-और जाननेकी रुचि होती है। एक दिन हमारे पास एक महिला आयीं। उनसे हमारा पहलेसे कोई परिचय नहीं था। पर देखनेमें बहुत प्रभावशाली मालूम पड़ीं। उन्होंने बैठकर भागवतके एक श्लोकका अर्थ पूछा।

मैंने उनको सुनाया। वे बोलीं कि स्वामीजी, यह अर्थ तो श्रीमद्भागवतकी किसी भी टीका-टिप्पणीमें नहीं है। यह सुनकर हमको खुशी हुई। मैंने कहा कि आपने भागवतकी सारी टीका-टिप्पणी पढ़ रखी हैं ? उन्होंने कहा कि हाँ महाराज ! संस्कृतमें पचास टीकाएँ तो भागवतपर हैं। फिर तो उनको सुनानेमें रस आने लगा। हमको अनुभव हुआ कि यह बहुत अध्ययनशील हैं। पहलेसे इस विषयमें विचार करके आयी हैं। आप चाहे पढ़नेके लिए विद्यालयमें जायें, चाहे श्रवणके लिए सत्संग-भवनमें जायँ आपको जो विषय पढ़ना है या श्रवण करना है, उसके बारेमें यदि पहलेसे थोड़ा-सा अध्ययन कर लें, उसकी टीका-टिप्पणी देख-सुन लें तो आपको मजा आयेगा।

अब आओ सातों प्रश्नोंपर विचार करें—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥८.३

अक्षरं ब्रह्म। अक्षर परम ब्रह्म है। यहाँ अक्षर शब्दका अर्थ देखो। लिपियाँ अलग-अलग होती हैं। नागरी अलग है, तमिल अलग है, अंग्रेजी अलग है, रसियन अलग है, चायनीज अलग है। परन्तु उनमें 'अ' या 'क' अक्षर एक है। लिपिके भेदसे अक्षरमें भेद नहीं होता। अक्षरके आकारका नाम लिपि है। आकारके भेदसे निराकार अक्षरमें भेद नहीं होता। आकार स्त्रीका है, आकार पुरुषका है, आकार पशुका है, आकार पक्षीका है, आकार पेड़-पौधेका है। आकार माने शक्ल-सूरत, आकृति। आकृतिसे जातिका ग्रहण होता है। जैसे गाय या भैंसको पहचानने के लिए उनकी आकृति देखनी पड़ेगी। भैंस ऐसी होती है, गाय ऐसी होती है। यह गायोंकी जाति। यह भैंसोंकी जाति। यह मनुष्योंकी जाति। जाति ब्राह्मण नहीं है। जाति हिन्दू-मुसलमान नहीं है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि तो वर्ण हैं। वर्णनात् वर्गः। शास्त्रीय वर्णनसे वर्णका नाम होता है और आकृतिसे जातिका ग्रहण होता है। आचार्योंसे मजहब बनते हैं। लिंगसे स्त्री-पुरुष बनते हैं।

तो अक्षर क्या है? परब्रह्म परमात्मा है। सम्पूर्ण आकारोंमें रहकर निराकार है। आकारेभ्यो निष्क्रान्ताः। निराकार शब्दका अर्थ तो यह है कि सब शक्ल-सूरतोंमें, आकारोंमें रहकर भी उनसे परे हो। जो राममें भी हो, कृष्णमें भी हो, शिवमें भी हो, देवीमें भी हो, गणेशमें भी हो, सूर्यमें भी हो, परन्तु हो सबसे अलग। यदि परमेश्वरकी केवल एक आकृति मान ली जाय तो वह एक व्यक्ति हो जायेगा। जैसे हम एक आदमी होते हैं, वैसे ही परमेश्वर भी एक आदमी होगा। व्यक्तियाँ अनेक हैं, लिपियाँ अनेक हैं, परन्तु उनमें जो अक्षरके समान एक तत्त्व है, उसको परम ब्रह्म बोलते हैं। महाभाष्यमें अक्षर शब्दका अर्थ है अश्नुतेत्ति। अश्नुते व्याप्नोति। जो अनेक आकारोंमें व्याप्त होता है, उसका नाम है अक्षर। अक्षर माने 'न क्षरति।' जिसका क्षरण हो, जो घिस जाय, उसको क्षर बोलेंगे। जैसे भूक्षरण होता है। माटी वह जाती है। यह क्षर है। परमात्मा वह है, जो कभी घिसता नहीं, पिटता नहीं, मिटता नहीं—एक सरीखा रहता है। एकका नाम है अक्षर। आर्यसमाज परमात्माको अक्षररूप मानता है, ईसाई भी अक्षररूप मानते हैं, मुसलमान भी अक्षररूप मानते हैं। हमारे सनातन धर्ममें भी परमात्माका स्वरूप अक्षर है। अक्षर माने अविनाशी, अनेकमें एक, सब आकारोंमें रहकर भी निराकार। आप उसका ध्यान कर सकते हैं। आकृतियोंका अलगाव करके सब आकारोंमें जो एक है, उसका ध्यान कीजिये। घड़े अनेक हैं, मिट्टी एक है। तरङ्ग अनेक हैं, पानी एक है। लपटें बहुत हैं, दीये बहुत जल रहे हैं, आग एक है। साँस अलग-अलग चल रही है, हवा एक है। ऐसे ही

परमात्मा होता है। अब यदि परमात्मा सगुण है तो आप उससे प्रार्थना भी कर सकते हैं। प्रार्थना माने प्रकृष्टत्वेन अर्थना। प्रभु, आप ही सबसे श्रेष्ठ हो, आपसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। हमारे धनसे, जनसे, अहंसे सबसे श्रेष्ठ आप हो। आपकी श्रेष्ठताको मैं स्वीकार करता हूँ। आप उसको नमस्कार भी कर सकते हैं। नमस्कार माने नमः, नमः, नमः—न मा—न मम। मेरा नहीं है, मेरा नहीं है—सब कुछ तेरा है। तुम्हारे बड़प्पनके सामने मेरा वड़प्पन कुछ नहीं है। आप उसके नामका जप भी कर सकते हैं—**ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म**। ॐ यह अक्षर ब्रह्म है। एक भी है, अक्षर भी है। **तस्य वाचकः प्रणवः**। उसमें केवल वाच्य, वाचकका भेद है। वाचक अनेक हैं और वाच्य एक है। वाचक राम भी बोल रहे हैं, श्याम भी बोल रहे हैं, ॐ भी बोल रहे हैं। अनेक स्थानपर, अनेक समयमें, अनेक रूपमें ॐकारका उच्चारण हो रहा है। परन्तु परमेश्वर एक है। आप उसका ध्यान कीजिये, प्रार्थना कीजिये, नमस्कार कीजिये, जप कीजिये। उसको अपने जीवनके साथ, मनके साथ, बुद्धिके साथ जोड़िये। यह जो आप एक घेरेमें सीमित हो गये हैं, आपके जीवनमें संकीर्णता आगयी है, यह अखण्ड ज्ञानमें बाधक है। मजहब एक घेरा ही होता है। अखण्ड परमेश्वरके स्थानपर एक आचार्य मजहब हो जाता है। इसी तरह एक जाति, एक परिवार, एक वर्ग, एक लिङ्गका घेरा होता है। ये सब परिच्छिन्नताएँ हैं। यदि आप परमात्माके साथ अपनेको जोड़ेंगे तो इन सारी परिच्छिन्नताओंसे अलग हो जायेंगे। आप कतरे नहीं रहेंगे, दरिया हो जायेंगे। घटाकाश नहीं रहेंगे, महाकाश हो जायेंगे। यह है अक्षर ब्रह्म।

अब दूसरा प्रश्न है अध्यात्म क्या है? उत्तर है **स्वभावोध्यात्ममुच्यते**। स्वभाव माने स्वसत्ता। आप द्रष्टा हैं। इधर देखो तो सब परमात्माका स्वरूप है और उधर देखो तो वह अक्षर

है, परमब्रह्म है। वह रहा विश्वसृष्टिका आधार और आप स्वयं द्रष्टा बनकर उसे देख रहे हो। द्रष्टा भी परमात्माका स्वरूप है। स्वभाव माने स्वस्य भावः—अपनी सत्ता, अपना भाव अभेदमें भी षष्ठी होती है। जैसे **पुरुषस्य चैतन्यः ब्राह्मणस्य शरीरम्** में अभेद होता है वैसे ही स्वभावः अर्थात् स्वस्य भावः में अभेद है। आपकी जो अपनी सत्ता है उसीका नाम अध्यात्म है। सबके भीतर हैं आप। इस देहके भीतर हैं, इन्द्रियोंके भीतर हैं, मनके भीतर हैं और बुद्धिके भी भीतर हैं। स्वकी सत्तासे ही सबकी सत्ता प्रकाशित होती है। इसलिए जीवका जो असली रूप है उसका नाम होता है अध्यात्म। आप सबसे निवृत्त होकर इसमें स्थिर हो सकते हैं। यह इसका स्वभाव है। आपके जितने कारखाने हैं उनको थोड़ी देरके लिए अपनी जगहपर रहने दीजिये। मकान, परिवारको अपनी जगहपर, धन-दौलतको अपनी जगहपर, शरीर-को अपनी जगहपर—उन सबकी ओरसे आँख मोड़कर आप अपने आपमें बैठ जाइये। यह भी परमात्माका ध्यान है। परमात्माके उपासनाकी एक पद्धति है। वह निवृत्ति है और परमात्माके नमस्कारमें, ध्यानमें जो तन्मयता है वह जपमें प्रवृत्ति है। सभी सांसारिक पदार्थोंकी ओरसे मन हटाकर अपने आपमें बैठ जाना निवृत्ति और परमात्माके नमस्कारमें, ध्यानमें तन्मय होना प्रवृत्ति। साक्षात्कारका मार्ग एकमें परमात्मा रहा 'वह' और दूसरेमें परमात्मा रहा 'मैं'। आखिर व्यवहारमें परमात्मा है कि नहीं? 'वह' और 'यह'के बीचमें ही तो व्यवहार चलता है। उधरसे भगवत्-सङ्कल्प आता है और इधरसे चेष्टा होती है।

अब देखो, **भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः**। दुनियामें आपको कुछ भी बनाना है, मिट्टीसे घड़ा बनाना है, पानीसे बरफ बनाना है, इस्त्रीमें गरमी लेकर कपड़ेकी सिलवट मिटानी है तो

कर्म करना पड़ेगा। भगवान् जब सृष्टिकर्म करता है, सृष्टि बनाता है तब अपनी योग-निद्रा छोड़कर अपने स्वरूप रूप वीर्यको सन्तानोत्पत्तिके लिए प्रयोग करता है, वैसे ही परमेश्वर अपने वीर्यको योगमायामें डालकर यह सृष्टि बनाता है। आप यह प्रसङ्ग चौदहवें अध्यायमें देखें—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥१४.३

यह गर्भाधान ही तो है मायामें—प्रकृतिके पेटमें। महद्ब्रह्म-योनिः अहं बीजप्रदः पिता—महद्ब्रह्म, महद्तत्त्व, बुद्धि यह माता है और विसर्गः कर्मसंज्ञितः जब प्रकृतिके प्रथम परिणाम महत्तत्त्वमें भगवान्का आभास पड़ता है तो आभासरूप वीर्याधानसे यह सृष्टि होती है। तस्मिन् वीर्यं दधाम्यहम्। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत—इसका अर्थ यह है कि वह सृष्टिकर्म भगवान्ने किया है। आप भी कर्म कीजिये और अपने कर्मके द्वारा स्वयं को भगवान्के साथ मिला दीजिये। आपका और भगवान्का मतभेद न हो। आपके कर्मकी दिशा और भगवत्-कर्मकी दिशा अलग-अलग न हो। राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है। जोड़ दो अपनेको भगवान्के साथ। एक सन्तने कहा कि प्रभो, यदि मैं नरकसे बचनेके लिए तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ तो मुझे नरकमें डालो और यदि मैं स्वर्गमें जानेके लिए प्रार्थना करता हूँ तो मुझे स्वर्ग कभी मत दो। मेरी इच्छा नहीं तुम्हारी इच्छा पूरी हो।

तो, कर्मके द्वारा भगवान्की आराधना कब होती है? वैदिक सिद्धान्तके अनुसार निष्काम भावसे किया हुआ यज्ञ अन्तः-करण-शुद्धिका साधन है। यह अपौरुषेय ज्ञान है। किन्तु गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं कि यज्ञ-योग की बात तो सीमित है। हमारा तो

कर्म ही यज्ञ है। कर्मकी इतनी उदार व्याख्या और किसी शास्त्रमें नहीं मिलती। द्रव्ययज्ञ, कर्मयज्ञ एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ये सब यज्ञ हैं। यहाँ तक कि हमारा जीवन ही यज्ञ है। यह जो पृथिवी सबको धारण करती है, वह पृथिवीका यज्ञ है।

यज्ञ करते समय क्रोध नहीं आना चाहिए। आपने पुराणोंमें पढ़ा होगा कि जब पृथुके घोड़ेको इन्द्रने कई बार चुरा लिया तो उनको क्रोध आगया और उन्होंने इन्द्रको मारनेका विचार किया। इसपर अत्रिने कहा कि तुम इस समय यज्ञमें दीक्षित होनेके कारण घोड़ा चुरानेवाले को भी नहीं मार सकते। ठहरो हम वेदमन्त्रसे ही इन्द्रको पकड़ते हैं और उसको मारते हैं। यदि तुम अपनी शारीरिक शक्तिका प्रयोग करोगे तो यज्ञकी शक्तिका तिरस्कार हो जायेगा। इसको ऐसे समझो कि तुम धर्मके द्वारा धन कमा रहे हो। तुम्हारे साथ किसीने गड़बड़ी की। इसपर तुमने यदि यह विचार किया कि इसने हमारे साथ बेईमानी की है, इसलिए हम भी इसके साथ बेईमानी करेंगे तो धर्मपर तुम्हारा जो आश्रय था वह छूट गया। सामनेवाला चाहता था कि तुम धर्म छोड़ दो और तुमने धर्म छोड़कर उसका साथ दिया। यदि तुम कहते कि हम तो सच बोलना चाहते थे, पर यह झूठ बोलता है, इसलिए हम भी झूठ बोलते हैं तो तुम्हारा सच छूट गया। तुम भी असत्य-वादियोंकी कोटिमें चले गये। तो कहनेका मतलब यह है कि यज्ञमें कोई विघ्न-बाधा पड़े तब भी आप क्रोध न करें, क्योंकि आपका यज्ञ सबके लिए है। यज्ञ शब्दका अर्थ है कर्मके द्वारा भगवान्‌की आराधना करना। कर्म अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए नहीं, भगवान्‌की आराधनाके लिए हो। गीता कहती है कि

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

मनुष्य अपने कर्मके द्वारा भगवान्‌को आराधना करके सिद्धि प्राप्त करता है। अतः आप देखिये कि अपने कर्मसे किसकी आराधना करते हैं? **कस्मै देवाय हविषा विधेम**? आप इस लक्ष्यको ध्यानमें रखिये कि आपका कर्म होता है—जिनको वस्त्रकी जरूरत है, उनको वस्त्र देनेके लिए, जिनको मकानकी जरूरत है, उनको मकान देनेके लिए, जिनको भोजन की आवश्यकता है, उनको भोजन देनेके लिए। आप यह भावना रखिये कि हम तो अपने कर्म-कलापसे सर्वात्मा भगवान्‌की आराधना कर रहे हैं, यज्ञ कर रहे हैं, अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए, अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिए, भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए और अपनी गल्तियों का परिमार्जन करनेके लिए। कर्मके चार उद्देश्य होते हैं। एक तो अबतक हमसे जो भूलें हुई हैं, उनके प्रायश्चित्तके लिए कर्म करते हैं। दूसरे हमारे अन्तःकरणमें जो अशुद्धियाँ हैं, वासनाएँ हैं उनको मिटानेके लिए कर्म करते हैं। तीसरे माता-पिताके प्रति, समाजके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है, उसकी पूर्तिके लिए कर्म करते हैं और चौथे विश्वात्मा भगवान्‌की सेवाके लिए कर्म करते हैं। अपने कर्त्तव्यके पालनमें जब हमारा अन्तःकरण निष्काम होता है, निर्मल होता है तो जैसे आकाशमें सूर्य चमकता है वैसे ही हमारे अन्तःकरणमें परमेश्वरका प्रकाश हो जाता है।

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः का तात्पर्य है कि प्राणियोंके हृदयमें नवीन-नवीन भावनाकी उत्पत्तिके लिए अथवा पञ्चभूतोंसे नवीन-नवीन वस्तुओंके निर्माणके लिए, उनके भीतर छिपी शक्तिको प्रकट करनेके लिए भगवान् जो विसर्गरूप कर्म करते हैं, उसमें तब भी अपने कर्म द्वारा सहयोग करें। भगवान् श्रीकृष्ण उठाते हैं गोवर्धन। ग्वाल-बाल गोवर्धन तो नहीं उठा सकते, लाठियाँ लगाते हैं। ऐसे ही भगवान् जो कर रहे हैं, उसमें हमारी लठियाका, हमारे हाथका सहयोग भी होना चाहिए।

भगवत्कर्ममें अपने कर्मके सहयोग द्वारा हम भगवान्की आराधना कर सकते हैं। अधिभूतं क्षरोभावः—क्षर भी भगवान्का ही रूप है, कर्म भी भगवान्का रूप है और अधिभूत भी भगवान्का ही रूप है। हम लोग शिवमहिम्न स्तोत्र पढ़ते हैं—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योमस्त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि॥

यह पृथिवी भगवत्रूप है। पृथिवीका कर्मयोग यह है कि वह सबको धारण करती है। परन्तु अपने ऊपर थूकनेवालेपर, लघुशङ्का करनेवालेपर, शौच जानेपर, अपनेको खोदनेवालेपर कभी क्रोध नहीं करती और यह नहीं कहती कि हम तुमको अपने ऊपर धारण नहीं करेंगे। यही कर्मयोगका रूप है। जल अपने भीतर जो दूध डाले, उसका भी आप्यायन करता है, पालन-पोषण करता है और जो गन्दा करे, उसको भी तर करता है। सूर्य सबको रोशनी देता है, चन्द्रमा सबको चाँदनी देता है, हवा सबको साँस देती है, अग्नि सबको तेज देती है। आकाश सबको घूमने, फिरने, बोलने, साँस लेनेका अवकाश देता है। वह यह नहीं कहता है कि गाली देनेवालेकी आवाज वहाँ तक नहीं पहुँचायेंगे और तारीफ करनेवालेकी आवाज पहुँचा देंगे। आकाशमें सबकी आवाज बराबर है। यह यज्ञ है, भगवत्-कर्म है और इस अधिभूतके रूपमें स्वयं भगवान् हैं।

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृ ᳰ ह पृथिवीं मा हि ᳰ सीः॥

क्षरोभाव का अर्थ है भगवान् ही क्षर रूपमें हैं। बदलनेवाले

भी भगवान् ही हैं। एक वेदान्ती महात्मा थे। उनका आग्रह था कि परमात्मामें परिवर्तन नहीं होता। संसारमें परिवर्तन होता है। परमात्मा अपरिवर्तनशील तत्त्वके रूपमें एकरस और अपरिणामी है। मैंने उन महात्मासे कहा कि आप परिणाम क्यों बोलते हैं। नित्यनूतन क्यों नहीं बोलते? हमारा परमात्मा नित्यनूतन है। हम जितनी बार उसकी ओर देखते हैं, वह बिलकुल नया-नया दीखता है। यह जगत्का रूप है, विकारी नहीं है, परिणामी नहीं है। मोहके कारण ही इसमें विकार मालूम पड़ता है। जैसे दूधमें विकार हुआ तो दही बन गया। क्या दूध उत्तम रूप है और दही निकृष्ट रूप है? नहीं दूध भी उत्तम है, दहीं भी उत्तम है। दूध दहीके रूपमें बदल गया तो क्या। रस तो उसमें है। जो रस दूधमें था, वही रस एक नया रूप लेकर दहीमें आया। वही रस परमात्मा है—रसोहमप्सु कौन्तेय। यदि आप कहें कि मल-मूत्र रस नहीं होता तो किसीके लिए उसमें भी रस होता है। सूअरके लिए, पेड़-पौधोंकी खाद आदि के लिए उसीमें रस होता है। उनका भोजन उसीमें रहता है।

तो अधिभूतं क्षरो भावः। यह जो परिवर्तन है, इसमें पहचान लो कि इसके भीतर कौन है? यदि कोई दिनभरमें दस तरहकी पोशाक पहनकर, दस तरहसे बाल सँवारकर, दस तरहकी बोली बोलता हुआ आपके सामने आवे तो कैसा लगेगा। यदि आपका प्रिय होगा तो मजा आयेगा और अप्रिय होगा तो आप कहेंगे कि यह बनावट कर रहा है। जैसे अपने प्रियका हर वेश अच्छा लगता है वैसे ही जो लोग परमेश्वरको पहचानते हैं, वे जानते हैं कि परमात्मा नये-नये रूपमें प्रकट हो रहा है। वे सर्वरूपमें परमात्मा-का दर्शन करते हैं। यह क्षर भाव भी परमात्माका ही है। मिट्टी परमात्मा है तो क्या घड़ा परमात्मा नहीं है? हम लोग देहकी तरफ ज्यादा देखते हैं, तत्त्वकी तरफ नहीं देखते। इस शरीरमें

जो माटी है, पानी है, आग है, हवा है, आसमान है, यह सब परमात्माका स्वरूप है। हम पढ़ते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

यह सब परमात्माका स्वरूप है।

अब आप देवताओंकी बात लीजिये। हमारे सनातन धर्मकी विशेषता है कि प्रत्येक इन्द्रियके अनुग्राहक देवता होते हैं। आप जो आँखसे रूपको देखते हैं, उसके बीचमें सूर्यकी रोशनी है। वह एक ओर जहाँ रूपपर अनुग्रह करती है, रूपको चमका देती है, वहाँ दूसरी ओर हमारी आँखोंमें जो देखनेकी शक्ति है, उसको बढ़ा देती है। रूपका अनुग्राहक भी सूर्य है और नेत्रका अनुग्राहक भी सूर्य है। सूर्य देवता है और वह भेदभाव नहीं करता। यही बात चन्द्रमामें है। सूर्य और चन्द्रमाका अद्भुत जीवन है।

स्वस्ति पन्था अनुचरेण सूर्या चन्द्रमसि।

इसका तात्पर्य है कि हम जीवनमें सूर्यके समान आगें बढ़ें, चन्द्रमाके समान आगें बढ़ें। सबको प्रकाश दें, सबको आह्लाद दें। किसीकी हिंसा न करें और सबको कुछ-न-कुछ देते चलें। ये तीन विशेषताएँ हैं सूर्य और चन्द्रमाकी मनुष्यको इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। अज्ञानीको ज्ञान देना, प्रकाश देना, सबको शक्ति देना, सबको आनन्द देना, किसीकी हिंसा न करना और चलते रहना-कभी रुकना नहीं। चरैवेति-चरैवेति। यह मनुष्यका धर्म है। यज्ञ है।

पुरुषश्चाधिदैवत-में जो पुरुष शब्द है उसका अर्थ है—हिरण्यगर्भ। सम्पूर्ण विश्वसृष्टिके मूलमें हिरण्यगर्भ है। एक ब्रह्माण्डमें है ब्रह्मा और हमारी इन्द्रियोंको शक्ति देने के लिए वह भिन्न-भिन्न रूपमें है। आँखके लिए सूर्य है, कानके लिए दिशाएँ हैं, हाथके

लिए इन्द्र है, वाणीके लिए अग्नि है, जीभके लिए, स्वादके लिए वरुण है। इन देवताओंकी भिन्न-भिन्न रूपसे उपासना करनेसे, उन उन इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ती है। जैसे मिनिस्टरोंके विभाग बँट जाते हैं, वैसे ही हमारे ऐन्द्रियक कर्म हैं। उनका विभाग एक समष्टि देवताके हाथमें बँटा होता है। वही उसका मूलस्रोत होता है। उसकी आराधना अलग-अलग की जा सकती है। जैसे सूर्यकी पूजा होती है, चन्द्रमाकी पूजा होती है वैसे ही अलग-अलग अधिष्ठातृ देवताओंकी पूजा होती है। अश्विनी कुमारोंकी पूजा, वरुणकी पूजा, अग्निकी पूजा, ये सब हमारी व्यष्टिको शक्ति देनेवाले स्रोत हैं। हमको जहाँसे भोजन मिलता है, वहाँके प्रति कृतज्ञ होना, आदरभाव प्रकट करना—देव-पूजा है। यह देव-पूजा भी परमेश्वरकी ही पूजा है, क्योंकि इन सब देवताओंके रूपमें परमेश्वर ही आता है।

अब भगवान्‌का छठा रूप है—अधियज्ञ। वह सबके शरीरमें होता है। थोड़ा बहुत सभीके शरीरसे यज्ञ होता है। यह बात दूसरी है कि कोई-कोई मारण-मोहन-उच्चाटनके लिए भी यज्ञ करते हैं। वहाँ उद्देश्य बदल जाता है। कहाँ प्राणियोंके पालन-पोषणके लिए किया जानेवाला यज्ञ और कहाँ मारण-मोहन-उच्चाटनके लिए किया जानेवाला यज्ञ। दोनोंका फल उनके भले-बुरे उद्देश्यके अनुसार मिलता है। जैसे वेद मन्त्रोंका उच्चारण होता है, वैसे ही अच्छे-बुरे शब्दोंका भी उच्चारण होता है। कोई सामनेवाले को मारनेके लिए बोला जाता है और कोई जिलानेके लिए बोला जाता है। इसी तरह आँखोंकी बात है। किसीको टेढ़ी नजरसे देखते हैं, किसीको लूटनेके लिए देखते हैं और किसीको मदद करनेके लिए देखते हैं, किसीको क्रोधसे देखते हैं, किसीको प्यार देनेके लिए देखते हैं। आँख वही है, परन्तु

देखेनमें अन्तर है। आपके भीतर है एक अधियज्ञ पुरुष। अधि-यज्ञका अर्थ गीताके इस श्लोक के सन्दर्भमें समझना चाहिए।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।। ५.२९

मनुष्यके यज्ञ और तपस्या दोनोंका उपभोग भगवान् करते हैं। जैसे आप कोई दान करते हैं तो जिसे आप दान देते हैं, उसमें बैठकर भगवान् ही दान लेते हैं। इसी तरह आप अपने लिए थोड़ा संकोच करते हैं, तप करते हैं और दूसरेको अन्नदान करते हैं। एकादशीका या और कोई व्रत रखते हैं तो आपने जो दान दिया, वह दान ईश्वरने गरीबके हाथमें बैठकर आपसे लिया। आपने गरीबको दान नहीं दिया ईश्वरको दान दिया। आपने जो तपस्या की, उसे ईश्वरने ग्रहण किया। आप जो भोग के लिए कंगाल हो रहे थे, उसपर आपने नियन्त्रण किया। आप अन्तर्यामीसे एक हो गये। अन्तर्यामी माने परमेश्वर, नियन्ता—जो भीतर रहकर सबको नियन्त्रित करता है। वह सबके भीतर बैठकर अनुशासन करता है। आपने अनुशासित रहकर ईश्वरके अनुशासनमें सहयोग दिया। कब? जब बुरा काम करनेसे आपने अपने हाथको रोक लिया। बुरी जगह जानेसे अपने पाँवोंको रोक लिया। बुरी बात बोलनेसे अपनी जीभको रोक लिया और बुरी बात देखनेसे अपनी आँखोंको रोक लिया। यहाँ तक कि किसीके प्रति दुर्भाव होनेसे अपने मनको बचाना भी मानसिक तप है। यह मत समझना कि हम तो बुरेको बुरा समझते हैं। इसमें क्या दोष है हमारा। बुरेको बुरा समझनेसे तुम्हारा मन जो बुरा बन गया, यह क्या तुम्हारी थोड़ी हानि है? इसीलिए ईश्वर भीतर बैठकर तुम्हें पकड़े हुए है कि तुम बिखर न जाओ। वे अन्तर्यामी हैं। तुम्हारा नियमन करते हैं और तुम्हारे द्वारा जो सत्कर्म होता है

उसको दोनों हाथ फैलाकर ग्रहण करते हैं। इसीलिए कहा—
भोक्तारं यज्ञतपसां।

अब देखो—सुहृदं सर्वभूतानां....। ईश्वर सबका सुहृद् है, सबका भला करता है। भगवान् गीतामें दूसरी जगह कहते हैं—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ ९.२४

आपके द्वारा जितने भी अच्छे कर्म होते हैं, जितना भी यज्ञ होता है, उसका भोग भगवान् लगाता है। भोग ही नहीं लगाता, सञ्चालन भी करता है। प्रभुरेव चका अर्थ है कि भगवान् उसका फल भी देता है। परन्तु लोग भगवान्‌की अधियज्ञ रूपसे पहचानते नहीं, इसीलिए वे अपने स्वरूपसे च्युत हो जाते हैं।

आओ गीतामें अधियज्ञका जो स्वरूप है उसकी ओर चर्चा करें—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ १३.२२

परमात्मा रहता है आपके शरीरमें। भगवान् आपकी देहमें अधियज्ञ रूपसे रहते हैं। असलमें कहना यह है कि निराकार ईश्वर भी वही है, आत्मा भी वही है, कर्म भी वही है। यह पृथिवी, जल, वायु, आदि अधिभूत भी वही हैं। इसमें जो देवता हैं, उनके रूपमें भी वही है। फिर भी तुम परमात्माका असली स्वरूप जानना चाहो तो समझो कि—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।

परमात्मा पाससे वस्तुओंको देखता है। तुम्हारे मनमें जो चीज आती है, उसके बिलकुल पास रहकर उसको देखता है।

तुम्हारी आँखें जिसको देखती हैं, उन आँखोंके पीछे बैठकर, आँखोंके झरोखोंसे वही झाँकता है। बुद्धिके दूरबीनमें-से भी वही देखता है। वह उपद्रष्टा है। यह काम करो इसकेलिए अनुमति देता है—**अनुमन्ता च**। यही भर्ता है भरण-पोषण करता है और उस कर्मका भोक्ता भी वही है। वही सर्वान्तिर्यामी है और वही निर्विकार परमात्मा है। वह कहाँ रहता है, इसी देहमें रहता है—देहेऽस्मिन्। परमात्मा तुम्हारे इसी शरीर रूप मोटरमें बैठा है। मोटर भी वही है। मोटरका चालक भी वही है। मोटरका एक-एक कलपुर्जा भी वही है। मोटरका मालिक भी वही है। मोटरकी आत्मा भी वही है। मतलब यह कि सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिका जो संचालन हो रहा है, वह वही है।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहऽस्मिन्पुरुषः परः।

यह जो परमपुरुष है, पुरुषोत्तम है, वह वहीं रहता है। यह शरीर एक नगरी है और उसका वासी है परमपुरुष। पुरुष माने शरीररूप नगरका निवासी। वह इसीमें सोता है, रहता है, इसीमें बसता है। यह बिलकुल मूक रूपसे रहता है। किसीका विरोध नहीं करता। यही उस परमात्माकी पहचान है।

अभिवादते विरुद्धश्च यो धर्मस्ते निबोधत।

ईश्वरका किसीसे वाद-विवाद नहीं होता। उसका किसीसे विरोध नहीं है। यहाँ तक कि वह अज्ञानको भी रोशनी देता है। उसीकी रोशनीमें अज्ञान मालूम पड़ता है। दुःख उसीकी रोशनीमें मालूम पड़ता है, पाप उसीकी रोशनीमें मालूम पड़ता है। सब कुछ उसीकी रोशनीमें मालूम पड़ता है। किसीको प्रकाशित करनेमें वह संकोच नहीं करता, यह नहीं कहता कि हाय-हाय यह मैं कैसे दिखाऊँ ? वह सबको अपनी गोदमें रखता

है। सबको प्रकाशित करता है। सबको आनन्द देता है। वही जीवन देनेवाला है, ज्ञान देनेवाला है, सुख-शान्ति देनेवाला भी वही है। उसी सुहृद्‌को जान लेनेपर शान्तिकी प्राप्ति होती है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा स शान्तिमृच्छति।

यदि मनुष्य भगवान्‌को अपना सुहृद् नहीं समझता है तो यह उसका दुर्भाग्य ही है। एक विद्यार्थी विद्यालयमें पढ़ रहा था। वह अनाथ था। समझता था कि मेरे माँ-बाप नहीं हैं। एक सेठ विद्यालय देखनेके लिए आये। उनकी दृष्टि उस लड़केपर पड़ी। उन्होंने प्रिंसिपलसे कहा कि इसकी पढ़ाईका खर्च हमारी ओरसे आयेगा। इसकी देख-रेख और पालन-पोषणका सब भार मेरे ऊपर होगा। किसीको बताना मत। जब लड़का बड़ा हुआ तो सेठने बुलाया। पहले तो वह डरा कि सेठने मुझे क्यों बुलाया। फिर जब उसको मालूम हुआ कि मैं जब पढ़ रहा था तभीसे इनकी दृष्टि मेरे ऊपर है। इन्हींके धनसे तो मैंने पढ़ा है। इन्हींके सौजन्यसे मैं ऐसा बना हूँ। तब उसको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह समझने लगा कि मैं निराश्रय नहीं हूँ, निराधार नहीं हूँ। मेरा कोई आश्रय है, मेरा कोई आधार है। इसीलिए मानव तुम अपने सुहृद्‌को पहचानो। भगवान्‌को सुहृद् बनाना नहीं पड़ता। सुहृद्‌के रूपमें पहचान्‌ना पड़ता है। वे कभी चपत लगाते हैं, कभी अपमान भी करते हैं। भूखे-नंगे भी रखते हैं। परन्तु उनके सौहार्दमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसीलिए उनको पहचानो। पुरुषः परः का अर्थ है कि भगवान् सबसे परे रहकर सबका पालन करता है और सबको पुष्टि देता है। संस्कृतमें पर शब्दका अर्थ होता है—पिपर्ति-इति परः। प्रिय धातुसे पर शब्द बनता है। उसका अर्थ होता है भीतर रहकर पालन करता है और पुष्टि देता है।

अब देखो आप इस व्याख्यासे कहाँ पहुँचे। यह कि निराकार सर्वाधिष्ठान भी वही, द्रष्टा भी वही, कर्म भी वही, अधिभूत भी वही, अधिदैव भी वही, अधियज्ञ भी वही। माने सर्वत्र सब रूपोंमें वही परमात्मा—वासुदेवः सर्वमिति। सब वासुदेव हैं, किन्तु स महात्मा सुदुर्लभः—इस बातको अनुभव करनेवाला महात्मा दुर्लभ है। माने परमात्मा तो सुलभ है, तस्याहं सुलभः पार्थ। महात्मा दुर्लभ है। अब स्मरणकी बात देखो—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥८.५
प्रयाणकालेऽपि च मां ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।

मृत्युके समय परमात्माकी पहचान कैसे हो? इसका उपाय यह है कि पहलेसे ही पहचानकर रखो कि सब परमात्मा हैं। तब आपको मृत्युके समय कोई घबराहट नहीं होगी। गीतामें आप पढ़ते हैं कि मृत्युःसर्वहरश्चाहम्—मृत्युके रूपमें परमात्मा है। अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन—सबके रूपमें परमात्माको पहचान लो तो सत्-असत् अथवा मृत्यु, अमृत कहीं भी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है, कोई घबराहट नहीं है, कोई अवनति नहीं, कोई पतन नहीं है। सर्वत्र परमेश्वर, परमेश्वर ही परमेश्वर!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

•

प्रवचन : ३

अधियज्ञोऽहमेवात्र—भगवान् कहते हैं कि मैं इस देहमें अधियज्ञ रूपसे रहता हूँ। कितने आनन्दकी बात है। भगवान् इसी शरीरमें रहते हैं। जिसमें मैं, उसीमें भगवान्। एक मकानमें दोनों, एक कमरेमें दोनों, एक पलङ्गपर दोनों। यह कितना सुगम है कि भगवान् हमसे दूर नहीं हैं। हम वे एक साथ रहते हैं। निर्गुण भगवान्को प्राप्त करना हो तब तो 'यह नहीं', 'यह नहीं', 'यह नहीं'—ऐसे निषेध करना पड़ता है और जो बच जाता है वह भगवान् होता है। निषेधशेषो जयतावशेषः—सबका निषेध करनेपर जो शेष रह जाता है वही अशेषात्मा भगवान् है। सगुण भगवान्के लिए निषेध करनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह भी भगवान् वह भी भगवान्। निर्गुण भी वही, सगुण भी वही, आत्मा भी वही, हृदय भी वही, देवता भी वही। निर्गुण भगवान् सबका निषेध करनेके बाद अपने आपके रूपमें अनुभवस्वरूप है और सगुण भगवान् जो दिखता है सबमें, सब जगह वह है। वेदान्त

दृष्टिप्रधान होता है और भक्ति भावप्रधान होती है। दृष्टि जैसी वस्तु होती है वैसी ही होती है और भाव हम जैसा करना चाहते हैं, वैसा होता है। दोनोंमें अन्तर होता है। दृष्टि वस्तुतन्त्र होती है, यह भाव कर्तृतन्त्र होता है। ये दोनों पारिभाषिक शब्द हैं। कर्त्ताके अधीन है भाव और जैसी वस्तु है उसके अनुसार है दृष्टि। जहाँ हम **वासुदेवः सर्वम्**—सब वासुदेव ऐसा कहते हैं वहाँ दिखता तो है पेड़, परन्तु उसमें भाव करते हैं वासुदेवका। वेदान्ती कहते हैं कि सब तो अनेक हैं। सब माने हम सब लोग स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी आदि। ये सब दीखते तो अलग-अलग हैं किन्तु इनको बताते हैं—'वासुदेव'। अब या तो भाव करो कि सब वासुदेव है या इनमें अलगाव है। निषेध करके जो शेष रहता है, उसको 'वासुदेव' मानो। ये दो प्रक्रियाएँ हैं। जब हम वासुदेवः सर्वम् भूत् बोलते हैं तब वासुदेव जो एक है और सब अनेक हैं। वासुदेव, परमात्मा एक है और उसको बोल रहे हैं सब। सब माने बहुतोंका जोड़ जैसे वे-वे-वे, ये-ये-ये। मैं-मैं-मैं नहीं, क्योंकि मैं का बहुवचन नहीं होता। मैं-मैं-मैं ऐसा अनुभव तो कभी किसी को होता ही नहीं। ये-ये-ये अथवा वे-वे-वे अनुभव होता है। इसलिए मैं का बहुवचन वैयाकरणोंको अभीष्ट नहीं है। व्याकरणके नियमानुसार—जब दो बोलना होगा तो बोलेंगे आवाम्। इसमें अहंका तो लोप ही हो गया। इसी प्रकार वयंमें भी अहं नहीं है। अहंका लोप करके ही हम 'आवाम्' 'वयं' बोलते हैं।

तो जैसे मैं का अहंका बहुवचन नहीं होता वैसे ही वासुदेवका भी बहुवचन नहीं होता। वासुदेव तो एक ही है। ये जो कहते हैं कि मुसलमानोंका परमात्मा, ईसाइयोंका परमात्मा, वैष्णवोंका परमात्मा, शैवोंका परमात्मा—यह सब मुसलमान, ईसाई, वैष्णव, शैव आदि शब्दोंकी पूँछ जोड़ी गयी है। परमात्मा तो अनेक नहीं, एक है।

अब प्रश्न है कि एकको अनेक कैसे बालते हैं ? वासुदेवः सर्वम् कैसे ? इसका उत्तर आचार्योंने दिया है। श्री रामानुजाचार्य कहते हैं कि वासुदेवका शरीर है सब। श्री निम्बाकाचार्य कहते हैं कि वासुदेवका कार्य है सव। श्री मध्वाचार्य कहते हैं कि वासुदेव प्रधान है सब। श्री वल्लभाचार्य कहते हैं वासुदेव ही सब कुछ बन गया है। श्री शङ्कराचार्यजी कहते हैं कि सब नहीं है केवल वासुदेव ही है।

अब आपलोग सबको वासुदेवके रूपमें अनुभव कीजिये, अपनी-अपनी रीतिसे। जो सब जगह होता है, उसके लिए पन्थ नहीं होते। जो यहाँ नहीं होगा, वहाँ होगा तो वहाँ जानेके लिए पन्थ चाहिए। उसमें सिक्ख पन्थ चाहिए, इस्लाम पन्थ चाहिए, इसाई पन्थ चाहिए, शैव पन्थ चाहिए, वैष्णव पन्थ चाहिए। जो सब जगह होता है, उसको पानेके लिए पन्थ नहीं है। उसको तो आप जहाँ हैं, वहीं पा सकते हैं। अक्षर भी ब्रह्म है, आत्मा भी ब्रह्म है, देवता भी ब्रह्म है, भूत भी ब्रह्म है और अधियज्ञ भी ब्रह्म है। इसका अर्थ हुआ कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। अब आपको स्मरणमें बाधा क्या है ? जो सब है, वह तो सब जगह स्पष्ट ही है। स्मरण तो उसका करना पड़ता है, जो पहले कभी मिला हो और अब आँखसे ओझल हो। जैसे एक शास्त्रीजी कल मिले थे। आज वे हमारे सामने नहीं हैं, उनकी याद आती है। हम जिनकी याद करते थे, आज वे हमारे सामने हों तो इसका नाम स्मृति नहीं है। इसका नाम तो प्रत्यक्ष है। इसीसे ऐसा मानते हैं कि परमात्मा तो साक्षात् अपरोक्ष है। प्रत्यक्ष है यह पुस्तक, परोक्ष है स्वर्ग और अपरोक्ष है हमारे मनके काम, क्रोध, लोभ, शान्ति, धृत्ति आदि। ये न स्वर्गके समान परोक्ष हैं, न पुस्तकके समान प्रत्यक्ष है। परन्तु इनको भी जाननेके लिए सामने देखा जाता है। इसी तरह अपना आपा साक्षात् अपरोक्ष

है। वह देखा जानेवाला नहीं है किन्तु उसको देखना है। इसीको साक्षात् अपरोक्ष बोलते हैं। इसको देखनेके लिए किसी जरियेकी जरूरत नहीं है।

तो आओ परमात्माको देखो। परमात्माकी स्मृति नहीं होती, उसका अनुभव होता है। स्मृति और अनुभव दोनोंमें अन्तर है? अनुभव वर्तमानमें है और स्मृति भूतकी है। गृहीत स्मृति। जिसको पहले ग्रहण किया है, उसको ग्रहण करना, जाने हुएको जानना, इसका नाम स्मृति है और अनजानेको जान लेना इसका नाम ज्ञान है। गीता कहती है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहिऽस्मिन्पुरुषः परः ॥१३.२२

यही है परमात्मा, इसी देहमें है। संस्कृत भाषामें देह माने राशि, ढेर। लोग गाते हैं—

मेरा हीरा हेराय गयो कचरेमें।

इसी कचरेमें हीरा है, हड्डी है, मांस है, चाम है। इसीमें स्त्री है, पुत्र है। इसीमें धन-दौलत है, सब कुछ है। सारी दुनियाका कचरा इसी कलेजेमें रहता है और इसीमें वह हीरा भी है। वह हीरा क्या है? हरि है, हर है। वह शाक्तोंका 'ह्रीं', वह मुसलमानोंका रहीम यहीं है। मजहब तो महज ऊपर चढ़नेकी एक सीढ़ी मात्र है। मजहबका महत्त्व कुछ परमात्मामें नहीं है। आपके पास मोटर है पर वह दरवाजेतक ही पहुँचायेगी। महलके भीतर, सोनेके कमरेतक उसकी गति नहीं है। इसी प्रकार सब महजब मोटरके समान हैं। चढ़ो, चलो, छोड़ दो। बिना छोड़े अपने महलमें नहीं पहुँच सकते—छोड़ना ही पड़ेगा। इसी देहमें परमात्मा है—वह उपद्रष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, महेश्वर है, परमात्मा है। अत्र

चाहे तो उसका निषेध करके देखो या उसका साक्षात्कार करो। यह-यह-यह करके आप अपने भावको दृढ़ बना लो। दोनोंमें राग-द्वेष नहीं है।

आपके दिलमें जो जलन है, स्पर्धा, असूया, तिरस्कार किसके लिए? आप होड़ किससे लगाते हैं? सबमें परमेश्वर है। आप किसके अन्दर दोष देखते हैं! वह तो परमात्मा है। किसका तिरस्कार करते हैं। वह तो परमात्मा है। किसके सामने अहंकार करते हैं? जब आप अपनेसे छोटेको देखते हैं—तब अहंकार करते हैं। अपनेसे बड़ेकी ओर देखिये। अहंकारके लिए कोई जगह नहीं। सबमें देखो परमेश्वरको तो राग, द्वेष नहीं होगा। पाँच दोष अपने साथ लगे हुए हैं। हम मरनेसे डरते हैं और किसीको मारना चाहते हैं। किसीकी मुहब्बतमें फँस जाते हैं और मैं मैं मैं अपने जीवनमें आ जाता है। ये चार बात अँधेरेमें होती हैं। आप आँख बन्द करके ऐसा करते हैं। डरते हैं आप आँख बन्द करके। दूसरेको मारना चाहते हैं—आँख बन्द करके। दूसरेसे मुहब्बत करते हैं आँख बन्द करके। असलियतको समझें तो न दुश्मनी होगी, न मुहब्बत होगी। न डर लगेगा। आपका मैं मैं मैं इसको परमात्मामें विलीन हो जाने दो। सब प्रकाश ही प्रकाश है। अज्ञानके अन्धकारमें मैं होता है। उस मैं में मोहब्बत होती है। एकसे मुहब्बत होनेपर दूसरेसे दुश्मनी होती है और अपने मरनेका डर होता है और जहाँ प्रकाश है?

सामनेसे शेर आया—ओ हो प्रभो! तुम आये हो। पहले नृसिंह बने थे न! प्रह्लादकी रक्षा की। आज मेरे लिए नृसिंह बनकर आये हो। इससे उत्तम और क्या होगा कि मैं आपका भोजन बन जाऊँ। लोग हलवा-पूड़ीका भोग लगाते हैं—हमारे शरीरका ही भोग लग जावे। यह होता है भक्तका भाव। वह

मृत्युमें भी परमेश्वरको पहचानता है। ऐसा भाव दृढ़ हो जाय कि मृत्युके समय भी परमात्माकी विस्मृति न हो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥८.५

संशय न करो।

अन्तकाले च—अन्तकालमें जो 'च' है उसका अर्थ यह है कि जीवनकालमें जो परमात्माका स्मरण करता है—अन्तकाले 'च' जीवनकाले—अन्तकाले 'च' दोनोंका समुच्चय है। आप जीवन-कालमें भगवान्‌का स्मरण कीजिये। स्मरण करनेके लिए गुफामें बैठनेकी जरूरत नहीं है। समाधि लगानेकी जरूरत नहीं। आप ऐसे ही स्मरण करें। स्मरण भी दो तरहसे होता है। एक तो ऐन्द्रियक अनुभवसे स्मरण होता है और एक श्रवणसे स्मरण होता है। सुनी हुई बातोंका खूब स्मरण होता है। जैसे आप संगीत सुनते हैं, उसमें जो शब्दका उच्चारण है वह धर्म है, और उसमें जो भगवान्‌का प्रेम है वह भक्ति है, उसमें जो लय है वह योग है और उसमें जो अर्थका साक्षात्कार है वह ज्ञान है। संगीत आप सुनने हैं तो गाये हुए पदका अर्थ भी समझते हैं या नहीं ? जो पवित्र शब्दोंका उच्चारण है, वह तो धर्म है। क्योंकि उच्चारण क्रिया है। उससे जो भगवान्‌का प्रेम आता है हृदयमें, वह भक्ति है और जब लय हो जाता है तो योग है। आप कहाँ हैं देख लीजिये। जिस अर्थका प्रतिपादन है, उस पदमें उस अर्थका साक्षात्कार होता है तो ज्ञान हो जाता है। शब्द सौन्दर्य है, भाव सौन्दर्य है, तन्मयताका सौन्दर्य है और साक्षात्कारका सौन्दर्य है।

अन्तकाले च—जिन्दगी भर दूसरोंका स्मरण करो और भगवान्‌का भी स्मरण करो परन्तु मरनेके समय—केवल भगवान्-

का स्मरण करो। मामेव स्मरणम्—केवल मुझे स्मरण करते हुए अर्थात् जिन्दगीमें जो दूसरे स्मरण हैं उनको ऐसा रखो कि वे जीवनकालमें तो भले रहे, आपके साथ परन्तु मृत्युकालमें वे आपके साथ चिपके न रह जायँ। मृत्युकालमें केवल परमात्मा रहे। अर्थात् आप जीवनकालमें जो दूसरी वस्तुओंका स्मरण करें उनमें आसक्ति न हो, स्मरण हो और भगवान्‌में आसक्ति हो। जब आसक्ति होगी तब मृत्युकालमें भगवान्‌का स्मरण होगा। रह गयी बात कलेवरकी। तो, जगन्नाथजीका भी कलेवर बदलता है। जब-जब अषाढ़ मासमें मलमास होता है, चाहे १२ बरसमें हो चाहे छत्तीस बरसमें हो, तब तब जगन्नाथजीका भी कलेवर बदल जाता है। कलेवर तो सबका ही छूटता है। किसीका कलेवर नहीं रहता। ब्रह्माका भी कलेवर छूटता है। एक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशका भी कलेवर छूट जाता है। यह ब्रह्माण्ड छूटता है तो कलेवर भी छूटता है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिस महत् तत्त्वमें मालूम पड़ते हैं, जब उसका कलेवर छूटता है तो हिरण्यगर्भका कलेवर भी छूट जाता है। जब्र निरुपाधिक ब्रह्मात्मैक्य-बोध होता है—तो प्रकृतिरूप कलेवर भी छूट जाता है। अन्तर्यामी हो गया ब्रह्मसे और उसका जो कलेवर है प्रकृतिरूप वह छूट गया। आपका भी कलेवर छूटेगा। इस सत्यसे आप आँख क्यों बन्द करते हैं। यह तो एक ठोस सत्य है। कलेवर तो छूटेगा, छूटेगा। यदि शरीर न छूटे तो आत्माकी पूर्णता जाननेकी कोई जरूरत ही न रहे।

भगवान्‌ने बड़ी भारी कृपा की है। जब आपका शरीर नहीं था तब आप थे, जब नहीं रहेंगे तब भी आप रहेंगे। इस समय भी—शरीर भी है और आप भी हैं। इस शरीरमें भी आप हैं। स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्—यह शरीर ज्यों-का-त्यों रहे। इस मशीनको चलाओ इससे काम लो। लेकिन इसको अपनेमें चिपकने मत

दो। यदि मशीन तुम्हारे साथ चिपक जायगी, मशीनमें तुम चिपक जाओगे तो जब मशीन टूटेगी तो तुम टूटोगे। जब मशीन मरेगी तो तुम मरोगे। यह तो आपको एक खिलौना मिला है। एक काम करनेका औजार मिला है। यह करण है। यह चिपकनेके लिए नहीं है।

प्रयाणकाले—ऐसा यह शरीर छूटे कि छूटते समय ऐसा न लगे कि हाय हाय यह छूट रहा है। जैसे हाथीके गलेमें फूलकी माला पड़ी हो और वह कब टूटकर गिर गयी यह हाथीको पता नहीं चलता। आप तो मस्ताने हैं। भागवतमें तो शराबीका दृष्टान्त दिया है। दो, तीन, चार बार शराबीका दृष्टान्त। **मदिरामदान्धाः** मदिराके मदमें चूर हो रहा है और उसके शरीरपर-से वस्त्र कब गिर गया पता नहीं चला। इसी प्रकार परमात्माके नशेमें ऐसे चूर हो जाओ—परमात्मामें ऐसे तन्मय हो जाओ—ऐसे तल्लीन हो जाओ कि शरीर कब गिर गया इसका पता न चले। **तद्भावं याति**। परमेश्वरसे मिलकर यदि सचमुच तुमने जीवनकालमें भी शरीरको अपनेसे अलग कर रखा है, अपनी सम्पदा जिसको देनी है दे दो, उत्तराधिकारीको दे दो, चाहे ट्रस्ट कर दो, शरीर छोड़ते समय सम्पदा अपनी है यह बात मनमें न रहे। यह शरीर भी एक सम्पदा है, बहुत बड़ी सम्पत्ति है क्योंकि यह तो सब काम करनेका यन्त्र है। इससे आप अर्थ कमाते हैं, इससे आप भोग करते हैं, इससे धर्म करते हैं, इससे सत्सङ्ग करते हैं, तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। बहुत बड़ी सम्पदा है। परन्तु जब काम पूरा हो जावे तो गिर गये। कहाँ गिर गये? कुछ पता नहीं। और तुम? तुम तो परमात्मासे एक हो गये। जब देहको पकड़ोगे तो देह जहाँ जायेगा, वहाँ तुम्हें जाना पड़ेगा। परमात्माको पकड़ोगे तो देह छूट जायेगा और तुम परमात्माके साथ एक हो जाओगे। इस सम्बन्धमें एक साधारण नियम

बताया। वह यह है कि मृत्युके समय तुम्हारा मन जिस चीजको पकड़ेगा वही हो जाओगे।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥८.६

अब जिन्दगी भर तो देखा सिनेमा, मरते समय क्या याद आयेगा? वहाँ अभिनेत्री है और अभिनेता है तो याद आवेगा। उसका हावभाव, कटाक्ष याद आयेगा। वहाँका दृश्य, फर्नीचर याद आयेगा। भोग-विलास याद आयेगा। यदि आप अपनेको जड़ वस्तुके साथ मिला लेंगे तो आप जड़ हो जाओगे और यदि आप चेतनके साथ अपनेको मिला दोगे तो चेतन हो जाओगे। आप अपनेको किसके साथ मिला रहे हो? समझो कि मरते समय मन रत्नाकार हो गया, स्वर्णाकार हो गया, रजताकार हो गया, वस्त्राकार हो गया, इस्पाताकार हो गया। आपका मन मरते समय जो आकार धारण करेगा वह आकार तो बना रह जायेगा और यह शरीर छूट जायेगा।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

इसे बोलते हैं—सावधान भाई, सावधान! आगेके लिए यदि तुम जड़से मिल गये तो फिर चेतना तुम्हारी जगेगी—चेतनाका लोप नहीं होगा। परन्तु कितने दिन जड़ रहोगे, इसका पता नहीं है। जितनी बलवती तुम्हारी तन्मयता होगी उतने ही अधिक दिन तुमको उसमें रहना पड़ेगा। तुम्हारा मन क्या बना? तुम्हारा मन हीरा बन गया। सोना बन गया। एक होती है भोग-वासना, वह भी शरीरको बनाती है। बिना आकारका मन नहीं होता। कोई-न-कोई शकल मनमें रहती है। मनकी शकल कैसे बनती है? एक तो जिससे तुमने प्रेम किया है, उसके अनुसार बनेगी। जैसे वेश्यासे किसीका प्रेम है, तो मन मरते समय

वेश्याकार होगा और यह शरीर छूट जायगा और वेश्याका आकार बना रहेगा। वह मन वेश्या हो जायगा। यह तो हुआ आकारके अनुसार।

एक समझके अनुसार बनता है। समझ क्या? तुम सबसे श्रेष्ठ किसको समझते हो? यह भी सम्भव है कि मरनेके समय जिसको तुम श्रेष्ठ समझते हो, उसका चिन्तन होने लगे और उसी श्रेष्ठ वस्तुकी शकल तुम्हारे मनमें आजावे और वही हो जाओ। एक होती है वासना। जैसे कोई रहता तो है राजस्थानमें और सन्देश, रसगुल्ला खानेकी वासना ज्यादा है, चावल खानेकी वासना ज्यादा है तो उसका जन्म बंगालमें होगा, क्योंकि यहाँ चावल अधिक मिलेगा और रसगुल्ला, सन्देश अधिक मिलेगा। मतीरा (तरबूज) खानेका मन हो और दालका हलवा खानेका मन हो तो जो बंगालमें है वह राजस्थानमें जा सकता है। वासनाकी प्रबलताके अनुसार मन इधर-उधर जोड़ता-तोड़ता रहता है। आपका प्रेम आपका कर्म और आपकी प्रज्ञा पूर्व-पूर्व जन्मसे सञ्चित हैं। आप बाहरसे ले-लेकर जो मनमें भरते हैं—बाहरकी वस्तुएँ हम आँखसे, कानसे, नाकसे, त्वचासे, जीभसे उठाते हैं और उठाकर उनको अपने मनमें भरते हैं। इसको अन्तःकरण बोलते हैं। अन्तःकरण माने बाहरकी चीजको अन्तरमें कर लें। अन्तः क्रियन्ते—अनेन।

बाहरकी वस्तु भीतर आती है। यह बाहरकी वस्तु बन्धक नहीं होती। भीतरकी वस्तु बन्धक होती है। जबतक वह हमारे मनमें नहीं आयेगी तबतक बँधेंगे नहीं। अन्तःकरण शब्दका सीधा अर्थ यही है कि बाहरकी वस्तुको यह भीतर कर लेती है। बाहरकी वस्तु बाहर रहे और भीतर जो है उसको आप देखिये। उसमें भी पहलेसे भीतर बहुत सारी चीजें रखी हुई हैं। उनको

संस्कार बोलते हैं। उनके अनुसार वासना होती है। वेदान्ती लोग उनको भी निकालते हैं। अपने कर्तापनको ही निकालते हैं। अन्तःकरणको ही निकाल देते हैं। नियम यही है कि आप शरीर त्याग करते समय जिस-जिस भावका स्मरण करेंगे, त्यजत्यन्ते कलेवरम् उसकी अवाप्ति होगी।

एक बात आपको सुनाते हैं। पहले पहल मैंने सुनी तो जँची नहीं। बात बहुत पुरानी हो गयी। यह जो जाना-आना है, यह बिना देहके नहीं होता। आप सोचो कि मिट्टीका जो सार है और जलका जो सार है, अग्निका जो सार है, वायुका जो सार है, आकाशका जो सार है—अवकाश है वह कहीं जाता-आता है? नहीं, यह जाना-आना—असलमें मनको कोई शकल, कोई वाहन जब मिलता है—तो आता-जाता है। मन एक देवता है। हमें बम्बईमें लोग बताते हैं—महाराज आज मोटरकी सुविधा नहीं रही, इसलिए घरसे बाहर नहीं निकले। टैक्सीपर नहीं बैठ सकते। टैक्सीपर बैठना अपनी शानके अनुरूप नहीं है। बड़े आदमी वाहनपर चढ़कर निकलते हैं। जितने देवता होते हैं—जिसको और वाहन न मिले वह चूहेपर चढ़कर निकलता है। भेड़ भी वाहन है। बैलपर भी चढ़ते हैं। हाथी घोड़ेपर भी चढ़ते हैं। हमारा मन है यह देवता है। जबतक इसको वाहन नहीं मिले तबतक यह कहीं जाता-आता नहीं। इसको एक आदिवाहिक शरीर चाहिए और ऐसा शरीर चाहिए जो दीवालको छेदकर निकल जाय। जो शीशेकी दीवारको भी पार कर जाय—ऐसा शरीर चाहिए। मनमें जो भाव होता है वही मनका शरीर बन जाता है।

वस्तुतः देशसे देशान्तरमें गमन नहीं होता। आप नरकमें जानेके लिए कहीं जाते हैं या स्वर्गमें जानेके लिए कहीं जाते हैं

यह पौराणिक कथा है। यह हमारे मनीराम तो ऐसे कारीगर हैं कि जहाँ हैं वहीं नरक बना लेते हैं। जहाँ है वहीं स्वर्ग बना लेते हैं। भावान्तर इसको बोलते हैं। देशान्तर गति नहीं। भावान्तर गति होती है। एक भावसे दूसरे भावमें जाना। जैसा आपने कर्म किया है, जैसा आपका ज्ञान है, जैसी आपकी वासना है—वैसा आपको स्वप्न आता है। यह एक सूक्ष्म शरीरकी गति है। कितने मरे हुए लोग जिनको पचास वर्ष हो गये होंगे, हमारा मन सपनेमें बनाकर उनसे मिलता है। कितने देवता—जिनका वर्णन हमने सुना है कि बहुत ऊपर स्वर्गमें रहते हैं, सपनेमें हमारा मन उनको बनाकर, उनसे मिलता है। यह देवता लोग नहीं बनाते, जैसे आप अपने मित्रसे सपनेमें मिल लीजिये और आप उससे पूछिये क्यों भाई! कल तो तुम हमसे सपनेमें मिले थे? कहेगा-नहीं, नहीं मैं नहीं आया। आपका मन सृष्टि बनाता है। मनका गमनागमन क्या है? मनका गमनागमन है—आपने बुरा काम किया, मैं बुरा काम करनेवाला हूँ—ऐसा अभिमान हुआ और उसे बुरे कामका जो फल है नतीजा है वह आपका मन स्वर्गके रूपमें या नरकके रूपमें स्वीकार कर लेगा या पुनर्जन्मके रूपमें। मांस खानेकी वासना है और हो गये जबड़ेवाले शेर। काटनेका मन है किसी दुश्मनको और हो गये विषैले साँप। जितना वेग है, तीव्रता है आपके द्वेषमें उतने दिन तक आपका मन साँप होकर रहेगा।

जितने भी मजहब हैं—बौद्ध, इसाई, मुसलमान, सिक्ख ये शरीरसे अलग आत्माको जरूर मानते हैं। वह मजहब ही नहीं होगा जो शरीरसे अलग आत्माको न माने। यह मजहबकी परिभाषा है। मुसलमान दोजख-भिश्त मानते हैं। ईसाई भी स्वर्ग मानते हैं। बौद्ध भी पुनर्जन्म मानते हैं—जैन भी स्वर्ग, नरक मानते हैं। मजहब माने इस देहसे अलग आपका एक

जीवन है, सूक्ष्म शरीर है और यदि वह नहीं मानेंगे तो अनेक बातोंकी संगति नहीं लगेगी। जैसे इस जीवनमें जन्मसे ही एक सुखी एक दुःखी क्यों होता है ? तो उसमें पूर्वजन्मका प्रसंग मानना पड़ता है। इस जन्ममें आप जो अच्छे काम करते हैं, उसका फल सुख नहीं मिलता है, जो बुरे काम करते हैं उनका फल दुःख नहीं मिलता है तो उन कर्मोंका क्या होगा ? मानना पड़ेगा कि करनेके बाद अपना फल देंगे। ईश्वर भी यदि आपका बिना किसी निमित्तके ही सुखी दुःखी बनाता है तो वह ईश्वर पक्षपाती होगा। इसके लिए भी यह मानना जरूरी होगा कि मरनेके बाद कर्मके अनुसार, वासनाके अनुसार और अपने निश्चयके अनुसार गति होती है।

मरनेके समय—पहले ऐसी कहावत थी कि लोग रुपये गाड़कर रखते थे—जीवनमें तो उसका उपयोग कर नहीं पाते थे। तब मरनेपर साँप होकर उसपर पहरा दिया करते थे। ऐसी भी कहावत है कि यदि नोटके बण्डलमें बहुत रुचि हो तो मरनेके बाद कागजका कीड़ा होकर उसमें रहे। एक साधुके बारेमें यह बात प्रसिद्ध है कि वे अयोध्याजीमें बहुत अच्छे महात्मा माने जाते थे। उन्होंने अपने शिष्योंको बताया कि जब हम मरेंगे तो मुझे लेनेके लिए विमान आयेगा और उसमें घण्टियाँ बजेंगी और मैं वैकुण्ठमें—साकेत लोकमें जाऊँगा। परन्तु जब मर गये तो न घण्टी बजी, न विमान आया तो शिष्य लोगोंने कहा—हमारे गुरुजीकी बात झूठी नहीं हो सकती। शिष्य लोग तो गुरुकी झूठी बातको भी सच्ची बनाकर दिखाते हैं। अयोध्याजीमें जो सबसे बड़े महात्मा थे, बुलाये गये। शिष्योंने उनसे पूछा महाराज, यह क्या हुआ ? न घण्टी बजी, न विमान आया, न हमारे गुरुजी विमानपर चढ़कर गये। उस महात्माने चारों ओर देखा। यहाँ क्या है, यहाँ क्या है ? छानबीन की। सामने एक

बेरका पेड़ था। उसमें बहुत बढ़िया पीला-पीला बेरका फल लगा हुआ था। महात्मा बोले—इस बेरके फलको तोड़कर ले आओ। शिष्योंने तुरन्त आज्ञाका पालन किया। महात्माने अपने हाथमें वह फल लेकर मसल दिया। मसलते ही एक कीड़ा पट्से जमीनपर गिर पड़ा। वह मर गया। बस, अब घण्टी बज उठी, देखते-देखते विमान आगया।

मरते समय उस साधुका जो मन है वह बेरके फलमें चला गया था। इसको आप दृष्टान्तके रूपमें समझिये। इसका जो सार है वह समझिये। आप अपने मनको ऐसा बनाकर रखिये जो अन्तकालमें अच्छी जगह जाये। और ऐसा कब होगा? जब आप जीवनकालमें अपने मनको अच्छी जगह रखेंगे। यदि आप अपने जीवनको ठीक नहीं रखेंगे—यह सोचेंगे कि अन्तमें सब ठीक हो जायेगा तो ऐसा नहीं होगा। जो जीवनमें भरा जाता है वह पहले निकलता है। इस जन्मके कर्मोंका फल सबसे पहले भोगना पड़ता है। उससे समय बचता है तब पिछले-पिछले जन्मोंके कर्म भी अपना फल देनेके लिए आते हैं।

कर्म दो तरहके होते हैं। एक आर्द्र, एक शुष्क। एक गीला-गीला काम होता है—एक सूखा-सूखा होता है। जो आर्द्र फल होता है उसका फल तुरन्त मिलता है और शुष्क कर्मका फल मिलनेमें देर होती है। एक कर्म लघु होता है, एक गुरु होता है। गुरु माने भारी-वजनदार। लघु माने हलका-फुलका। जो हलका-फुलका कर्म होता है उसका फल देरसे मिलता है, लेकिन जो गुरु कर्म होता है उसका फल बहुत जल्दी मिलता है। आपकी रातमें नींद टूटती है तो किसकी याद आती है? वहाँ तो कुछ नहीं होता है। नींद टूटनेके बाद, हमको आजकल वह सता रहा है—उसकी याद आयी। हमको उसने बहुत सुख दिया है—उसकी याद आयी। आपके मनमें किसकी याद आती है?

किसकी स्फुरणा होती है ? क्यों भाई, वहाँ तो कोई काम नहीं है। न तो आप दुश्मनसे बदला ले सकते हैं और न दोस्तको वहाँ कुछ दे सकते हैं। वहाँ जो कुछ याद आता है वह तो आपके मनका आदर्श है—आपके मनका आईना है—आपके मनका शीशा है। आप अपने मनको देख सकते हैं।

हमने करके देखा। पहले झूठे ही सोचा अमुक आदमी हमारा दुश्मन है। हमको यह-यह तकलीफ दे सकता है। सोचते-सोचते यह बात भूल गयी कि यह तो मैंने झूठी कल्पना की थी। गुस्सा आने लगा—क्रोध आने लगा। झूठी कल्पना ही अपनेको दुःख देती है। झूठी कल्पना मनमें बैठी कि अमुक हमसे प्रेम करता है। हम उसके पास जायेंगे तो वह ऐसे मिलेगा। ऐसे मिलेगा और फिर उसके प्रति मनमें बहुत मजा आने लगा। रस आने लगा। बिलकुल झूठी कल्पना। हमारी कल्पना बार-बार दुहरानेपर ठोस बन जाती है। मैंने कहीं राजनीतिकी पुस्तकमें यह बात पढ़ी थी कि एक झूठी बात अगर सौ बार बोली जाय तो वह बोलनेवालेको ही सच मालूम पड़ती है। यह जो दुनियाकी बातोंको अपने मनमें दुहराते हैं वह झूठी है कि सच्ची—यह बात अलग छोड़ दो। अपने मनमें उसे दुहराते हैं—यह दुहराना ही हमारे सिरपर सवार हो जाता है।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।

यह मनुष्य अपनी भावनासे ही भावित हो जाता है। जैसे वैद्य लोग कोई दवा बनाते हैं। बाजारसे यह दवा ले आओ, कुचला ले आओ—जहर है, इसको सात दिन गोबरमें रखो। सात दिन पानीमें रखो, सात दिन मट्ठेमें रखो। सात दिन दूधमें रखो। सात दिन घीमें रखो। सात दिन शहदमें रखो। अब यह जहर, यह कड़वा कुचला जो पेटमें जाकर आँतको काट

देता, भावित होकर औषध बन गया, रसायन बन गया। इसी प्रकार भावनाका प्रभाव पड़ता है वस्तुपर और वस्तुके स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है। हम एक क्रोधी आदमीको देखते हैं—अभी थोड़े दिनोंकी बात है एक सज्जन दाढ़ी बढ़ाकर हमारे पास आये। गलेमें माला भी बहुत तरहकी थी। दाढ़ी मनके भावको छिपाती है। गुस्सा या प्रेम आजाये तो मालूम नहीं पड़े। वे हमारे सामने कुर्सीपर बैठे थे। मैंने गौरसे देखा—तो उस दाढ़ीके भीतर पता चलता था कि कोई बहुत क्रूर व्यक्ति बैठा है। चेहरेमें—आँखमें क्रूरताकी लाली थी। चेहरा रूखा था। दाढ़ीमें तेल-फुलेल लगा था। दाढ़ी बहुत चिकनी थी। लेकिन भीतर क्रूरता थी। मनुष्यकी भावना केवल अन्तरात्माको ही नहीं शरीरको भी बिगाड़ देती है। आप स्थूल शरीरको तेल-फुलेल लगाते हैं, स्नो, पावडर लगाते हैं, चिकना-चुपड़ा रखते हैं, दूसरेकी आँखको मोह ले, ऐसा चाहते हैं। लेकिन आप अपने मनको इतना चिकना-चुपड़ा नहीं रखते हैं। स्नेह माने चिकनाई। दूध स्नेह है। आप मलाई अपने चेहरेपर लगाइये स्नेह है। आपके चेहरेमें चिकनापन आयेगा। दूध, दही, मक्खन सब स्नेह हैं। जैसे आप अपने बाहरके चेहरेको स्नेहसे युक्त रखना चाहते हैं, मुस्कराकर बोलें, प्रेमसे देखें—वैसे आप अपने मनको भी, मानसिक शरीरको भी सदा तद्भावभावित—अच्छा रखें और अच्छी जगह ले जायँ। तब आपकी गति सुनिश्चत है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।



प्रवचन : ४

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७.८

युक्तिपूर्वक मनुष्यके कर्त्तव्यका दिशानिर्देश करते हैं। एक होती है आज्ञा 'ऐसा करो।' एक आज्ञाके साथ उसका कारण भी बताया जाता है कि ऐसी आज्ञा क्यों दी है ? जब युक्तिपूर्वक बात कही जाती है, तब उसमें बुद्धिमान् पुरुषकी प्रवृत्ति होती है और केवल आज्ञामें श्रद्धालुकी प्रवृत्ति होती है। श्रद्धालु पुरुष सिर झुकाकर आज्ञाको स्वीकार करता है। अनुचित, उचितका विचार छोड़कर हर समय मेरा स्मरण करो और अपने कर्त्तव्य कर्मका पालन करो—ऐसा क्यों कहते हैं ? इसमें हेतु क्या है ? अविनाशी है परमात्मा—पहला यह हेतु है। **अक्षरं ब्रह्म परमं।** जो अविनाशी वस्तु होती है उसका हर समय स्मरण होना सम्भव है। वह अपना ही स्वरूप है—**स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।** इसलिए अपना स्वरूप सर्वदा स्मरण किया जा सकता है और जो पञ्चभूतके रूपमें सर्वदा खेल रहा है, जो वही है, उसका भी स्मरण किया जा सकता है । जो अधिदैवत पुरुष है, जैसे—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि इनका भी सर्वदा स्मरण किया जा सकता है। और जो अधियज्ञ है—अधियज्ञका अर्थ होता है—जितना भी यज्ञ हो रहा है। यह जीवन हमारा यज्ञमय है। सबका जीवन यज्ञमय है। ये पेड़-पौधे भी यज्ञ करते रहते हैं। फलके द्वारा यज्ञ करते हैं, फूलके द्वारा, सुगन्धके द्वारा यज्ञ करते हैं। पत्तेके द्वारा यज्ञ करते हैं—तनेसे, छिलकेसे, जड़से, छालसे यज्ञ करते हैं। पेड़-पौधोंका जीवन भी यज्ञमय है। पशु, पक्षी भी यज्ञ करते हैं। कोई अनिष्टके निवारणमें समर्थ

होते हैं, कोई इष्टके प्रापणमें समर्थ होते हैं। कुछ लेते हैं, कुछ देते हैं। यह यज्ञका स्वरूप है। आदान—जैसे हम अग्निसे उष्णता लेते हैं। जो आहुति डालते हैं उसकी सुगन्ध लेते हैं। यश लेते हैं। जो उसका स्वर्गादिरूप फल है सो लेते हैं। यज्ञमें लेनेके साथ-साथ देते भी हैं। आदान-प्रदान और उत्सर्ग। उत्सर्ग माने एक नियम। इतने समय तक भोजन नहीं करेंगे। इतने समय तक सोयेंगे नहीं। इतने समय तक कोई संसारका सुख नहीं लेंगे। यज्ञ माने जीवनको नियमित करनेकी एक पद्धति। आदान भी है यज्ञमें—प्रदान भी है—उत्सर्ग भी है।

सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रभु, जो पृथिवीके द्वारा यज्ञ हो रहा है उसमें भी है। पृथिवी अन्नदान करती है—फलात्मक। एक किलो गेहूँ आप धरतीमें बोयें और आपको एक क्विण्टल गेहूँ दे दे। थोड़ा दिया—बहुत लिया। यह पृथिवीका यज्ञ है। जलके द्वारा यज्ञ हो रहा है। यह जितना यज्ञात्मक विश्व है। यज्ञो वै विश्वः पृथिवी, जल, मन, विचार सब यज्ञ है। इस सम्पूर्णयज्ञ-में वे प्रभु अतर्न्यामोके रूपसे सर्वव्यापीके रूपसे विराजमान हैं। सर्वेषु कालेषु—जहाँ देखो वहाँ वही है।

स्वर्गाश्रममें एक महात्मा थे। वे रातको बोलते थे, तू ही तू। तू ही तू। जहाँ देखता हूँ, वहाँ तू ही तू है। सर्वेषु कालेषु। फिर स्मरण करने में क्या बाधा है? रोटो बनाते हैं—किसीके लिए। प्रेमसे रोटी बना रहे हों तो रोटी गोल हो, यह भी ध्यान रहेगा। मोटी पतली न हो, यह भी ध्यान रहेगा। सेंकते समय जले नहीं, यह भी ध्यान रहेगा। जिसके लिए बना रहे हैं, उसकी भी याद रहेगी और हम कहीं जल न जायँ—स्वभावोध्यात्ममुच्यते—हमारा हाथ जले नहीं, इसका भी ख्याल है। आपका मन इतनी शीघ्रतासे सब काम करता जायगा कि कहीं आपसे त्रुटि नहीं होगी। आपको कितना सावधान कर देता है प्रेम, प्रियतमकी मानसिक उपस्थिति।

काल तो एक ख्याल है। आप कभी संगीत सुनने में तन्मय होगे तो कितना समय बीत गया यह आपको पता नहीं चला होगा। कभी आप अपने मित्रसे बात करनेमें लग गये हों तो कालका ख्याल नहीं रहा होगा। हमको ऐसे लोग मिले हैं, जिनसे बात करनेमें सारी रात बीत गयी। अरे, चार बज गये, पँच बज गये। हम लोग तो ब्रह्मचर्चामें लग गये। जहाँ अपनी रुचि होती है, जहाँ अपनी प्रीति होती है वहाँ कालपर ध्यान नहीं जाता, अपने प्रियपर, अपने इष्टपर ध्यान जाता है। काल तो एक काल है। दु:ख का काल हो तो पाँच मिनटमें २-३ बार घड़ी देख लेते हैं। जैसे कोई श्रोता हो, मन प्रवचन में न लगता हो तो बार-बार घड़ी देखेंगे कि अभी यह कितना चलेगा? और किसीका मन लग गया हो तो वह पूरा होनेपर कहेगा—अरे, एक घण्टा हो गया? ये घण्टा मिनट हमारी मन:स्थितिके साथ सम्बन्ध रखता है। कालका हम दार्शनिक रूप आपको बतावें।

चार्वाक मतमें भी काम नहीं है। काल नामका द्रव्य ही नहीं है। चार भूतोंके संयोगसे मन बनता है और मन कालकी कल्पना करता है। बौद्ध मतमें भी काल कोई वस्तु नहीं है। जैन मतमें है। न्यायवैशेषिकमें काल है। परन्तु सांख्ययोगमें काल नहीं है। महत्तत्वमें यह काल प्रतीत होता है ऐसा सांख्यमत है। काल प्राकृत नहीं है—आविद्यक है। भ्रमजन्य है। मीमांसामें काल द्रव्य है परन्तु वेदान्तमें काल द्रव्य नहीं है। अविद्याकी वृत्ति है। भक्ति सिद्धान्तमें भी काल द्रव्य नहीं है। एक भगवत् संकल्प है। शैव मतमें भी काल द्रव्य नहीं है। इसलिए काल आपको मालूम पड़ता है। सेकण्ड-सेकण्ड। मिनट-निमट। उधर आपका ध्यान ही नहीं जाता। काल आपके मनका एक ख्याल है। आप कालको मत देखिये—अपने कर्मको देखिये। आप अपने भावको देखिये। अपने इष्टको देखिये। अन्तर्यामीको देखिये। अपने

आपको देखिये। कालको क्यों देखते हैं ? आप कालको मत देखिये। घड़ीमें अलार्म लगा दीजिये। वह टनटन करके आपका ध्यान खींच लेगा। काल दूसरेके जिम्मे कर देनेकी चीज है, अपने दिमागमें रखनेकी चीज नहीं है। हमें तो अपना कर्म पूरा करना है। कर्मको पूरा करना या कर्मफलको प्राप्त करना भी आपका काम नहीं है। आपका काम है अपने समयको कर्मसे भरते जाना। आपका कोई सेकण्ड, कोई मिनट, कोई घण्टा कर्मसे खाली न हो। यह पूरा कैसे होगा ? बिलकुल चिन्ता मत करो। यदि आपका कर्म ठीक-ठीक है तो वह पूरा होगा। आप करेंगे, आपका बेटा करेगा, आपका पोता करेगा, आपका परिवार करेगा, समाज करेगा, सारी सृष्टि करेगी, यदि आपका कर्म आवश्यक है तो । अंशुमान् गंगा नहीं ला सके, दिलीप गंगा नहीं ला सके, भगीरथ गंगा लाये। गंगा लानेका का काम था । यदि वह काम आवश्यक है तो कभी-न-कभी पूरा होगा। समाजकी माँग है, परिवारकी माँग है, राष्ट्रकी माँग है, ईश्वरकी सेवा है, वह कभी-न-कभी होकर रहेगी। आप अपना हिस्सा पूरा करते चलिये। आपकी जिम्मेवारीपर—फलासक्ति नहीं—और कर्मासक्ति भी नहीं—कालक्षेप कर रहे हैं। कालको तो हम ढकेल रहे हैं। जा तू बीतता जा—बीतता जा। हम लगे हुए हैं—तेरी ओर देखनेका हमें कोई अवकाश नहीं है।

सर्वेषु कालेषु—मामनुस्मर—तस्माद् क्योंकि मैं सब समय हूँ, सब जगह हूँ, सब हूँ, मैं ही स्थूल हूँ, मैं ही सूक्ष्म हूँ, मैं ही जीव हूँ—मैं ही ईश्वर हूँ—मैं ही सर्वव्यापी हूँ और मैं तुम्हारे शरीरमें ही रहता हूँ। इसलिए मेरा स्मरण करते चलो और जीवन युद्ध—युद्ध शब्दका अर्थ यहाँ—वर्णधर्मके अनुसार या आपद्-धर्मके अनुसार या मानव धर्मके अनुसार जो अपना कर्त्तव्य है—उसीको युद्ध कहते हैं, उसे करते चलो। यह अर्जुनके लिए युद्ध स्वधर्म है। तुम अपने

धर्म को देखो और अपने धर्म में अडिग रहो। तुम अपने कर्त्तव्यका पालन करते जाओ। ये मन और बुद्धि बड़े जबर्दस्त हैं। काम वर्तमानमें तो रहनेका नाम ही नहीं लेता। बच्चेको एक खिलौना दे दो तो दूसरा चाहेगा। दूसरा दे दो तो तीसरा चाहेगा। आपका मन बालकवत् है। यह वर्तमानमें रहना नहीं चाहता। आज कलकी बात सोचेगा। फिर कल परसोंकी बात सोचेगा। या तो पीछे जायेगा या आगे जायेगा।

भगवान् कहते हैं कि मन और बुद्धि मुझमें अर्पित कर दो। त्याग दूसरी वस्तु होती है। मायाका, मिथ्याका, दोषका, दुर्गुण-का त्याग होता है। संसारका त्याग होता है। ईश्वरके प्रति समर्पण होता है। आप अपनी सड़ी चीज—गन्दी चीज ईश्वरको अर्पित मत कीजिये। वृन्दावनमें आप सुपारी खरीदने दुकानपर जाइये तो दुकानदार पूछ लेगा—देवताकी पूजा करनेके लिए चाहिए या खानेके लिए चाहिए? देवताकी पूजा करना हो तो सड़ी सुपारी बेच देगा। अपने खानेके लिए हो तो जरा ठीक-ठीक देगा। मोटर मँगनी देनी हो तो अपने घरमें सबसे पुरानी बिगड़ी हुई होती है प्रायः वही भेजी जाती है। त्याग दूसरी वस्तु है और समर्पण दूसरी वस्तु है। त्याग होता है बुराईका और ईश्वरके प्रति समर्पण होता है। असंगता होती है अन्यमात्रसे, दृश्यमात्रसे। यह अलग-अलग स्तर है। बुराईका त्याग करो। अच्छाईको अपने साथ मत जोड़ो, ईश्वरके लिए उसका उपयोग करो। आपके पास चावल है तो अपना करके ऐसा मत रखो कि रखा-रखा घरमें सड़ जाये। उसे जिनको भूख है, उन्हें खाने दो। आपके पास ऐसे कपड़े हैं जो आपके काम नहीं आरहे हैं और काम आनेके लिए भी बहुत ज्यादा हैं। थोड़ेमें काम चल सकता है। पर लोभ ही तो है यह! उसको सर्वात्मा परमेश्वरके प्रति समर्पित करो। यह समर्पण होता है।

असंगता—देशमें, विदेशमें घूमो—रात हो, दिन हो, छोटी चीज हो, बड़ी चीज हो—उसपर आसक्त मत होओ, उससे चिपको मत। अपने स्वरूपमें असंगता आने दो। अपने स्वरूपमें असंगता, ईश्वरके प्रति समर्पण—बुराईका त्याग, इन सद्गुणोंको ग्रहण करो।

ये भगवान् बड़े लालची हैं। वृन्दावनके लोग कहते हैं कि और जगह तो भगवान्का हाथ ऊपर होता है और लोगोंको देते हैं—यह लो, यह लो, धन लो, भोग लो, शरीर लो, इज्जत लो। परन्तु ब्रजभूमिमें भगवान्का हाथ नीचे होता है। हमको दही दो, दूध दो, मक्खन दो, मिश्री दो, रोटी दो। ब्रजमें माँगनेवाले भगवान् रहते हैं और सारी सृष्टिमें देनेवाले भगवान् रहते हैं। ऐसा एक ब्रजवासियोंका लटका है। आपके सामने भगवान् खड़े हैं। उनको सर्वरूप मानों तो भी चले, विश्व भगवान्का रूप है।

आप लोग विष्णुसहस्रनामका पाठ करते होंगे। उसमें पहला नाम भगवान्का है—'विश्वम्'।

विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्य भवत्प्रभुः।

विश्वके रूपमें खड़े हैं भगवान् और आपसे अपेक्षा रखते हैं कि आप आपके मनको अपने शरीरको घेरकर रहते हैं—परिवार माने जो शरीरको घेरकर रहता है, परि माने चारों ओर और वार माने घेरनेवाला। आपको एक घेरेमें रखनेवाले जो लोग हैं उनको परिवार कहते हैं। वे परिवरण करते हैं। चारों ओरसे आपको घेर लेते हैं। आपका मन किस काममें लगता है ? शरीरके काममें या तो जो शरीरके सम्बन्धी हैं, उनके काममें आपका मन एक घेरेमें रहता है। आप अपने मनको उन्मुक्त कर दीजिये। विश्वके रूपमें भगवान् आपके सामने खड़े हैं और आपसे अपेक्षा रखते हैं। अपेक्षा क्या

रखते हैं ? यह कि आपका मन विश्वकी ओर भी जाय। विश्वका सुख, विश्वका कल्याण, विश्वकी प्रसन्नता आपका मन देखे। आपकी बुद्धि क्या विचार करती है ? अपना और अपने लोगोंका सुख। नहीं, आपकी बुद्धि सबके सुख और समृद्धिका विचार करे। सबकी सुख-समृद्धिके लिए काम करे। आपकी बुद्धि, आपका मन भगवान्‌के प्रति आसक्त हो। अब विश्वकी बात छोड़ दें।

गीताके बारहवें अध्यायमें जो भक्तिका वर्णन है उसके सम्बन्धमें तीन मत हैं। श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि यह विश्व विराट् आत्माकी भक्ति है। शंकराचार्यने स्पष्ट किया है—भक्तिका क्या करोगे ?

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१२.१३

यह तो सम्पूर्ण विश्वरूप भगवान्‌की भक्ति है। श्रीरामानुजाचार्य कहते हैं—यह चतुर्भुज नारायणकी भक्ति है, श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीवल्लभाचार्य, ये लोग कहते हैं कि ये दो हाथवाले मुरलीमनोहर, श्यामसुन्दरकी भक्ति है। विश्वरूपका भगवान्‌ने दर्शन दिया। ग्यारहवें अध्यायमें इसलिए कि यह विश्वरूपकी भक्ति है—यह शंकराचार्यका मत है। चतुर्भुजरूपसे ही श्रीकृष्ण रहते थे, इसलिए चतुर्भुजकी भक्ति है और **दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन**—यह अर्जुन बोलते हैं, इसलिए यह द्विभुज श्रीकृष्णकी भक्ति है। कुछ भी हो। आपके सामने भगवान् खड़े हैं और आपसे कुछ माँग रहे हैं। यह देखो करुणा है। यह देखो दयालुता, यह देखो सद्भाव।

आप हमको पाँच रुपया दे गये और बोले कि एक रुपयेकी हमको जरूरत है दे दीजिये और हमने कहा नहीं। वह पाँच रुपया जिसने दिया था वही आपसे एक रुपया माँग रहा है—

और आप 'ना' बोल रहे हैं। उसका सौजन्य तो देखिये कि दिया पाँच और यह नहीं कहता है कि यह हमारा है। तुम इसमें-से हमको एक दो। वह कहता है—नहीं—नहीं तुम्हारा है, तुम अपनेमें-से हमको दो। यह देखो प्रभुका स्वभाव है। अर्पण करो—मन उसीका दिया हुआ है, बुद्धि उसीकी दी हुई है। खड़ा होकर सामने माँगता है। मय्यर्पितमनोबुद्धिः। यहाँ आठवें अध्यायमें तो है ही, बारहवें अध्यायमें भी है।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१२.१४

एकवार माँगनेसे नहीं दिया। दो बार माँगते हैं। और दोनों एक साथ नहीं देते हो, तो अलग-अलग भी दे दो।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।१२.८

भगवान् तुम्हारे सामने हैं—जो मालिक हैं, जिनकी दी हुई चीज है वे तुमसे माँग रहे हैं कि अपना मन, अपनी बुद्धि हमको दो।

हमसे पाँच रुपया माँगिये—अभी निकालकर दे देते हैं। रोटी माँगिये—तैयार न हो तो तैयार करके खिला देते हैं। कपड़ा माँगिये—अभी देते हैं, बाजारसे मँगा देते हैं, बनाकर देते हैं। लेकिन वे रुपया, रोटी, कपड़ा या कोई वस्तु नहीं माँगते, वे भगवान् तो मन, बुद्धि माँगते हैं—वह कैसे दें? मन, बुद्धि न कपड़ा है, न नोट है, न वह भोजन ही है। हम अपना मन, बुद्धि भगवान्को कैसे अर्पित करेंगे? आप इसपर थोड़ा ख्याल करो। अगर आपके मनमें अर्पित करनेकी इच्छा होगी तब तो यह प्रश्न उठेगा! भगवान् तो माँगते हैं।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

मँगता तो आपके दरवाजेपर खड़ा है। गोपी! माखन दे दे। माखन सरीखा मन दे दे। मिश्री दे दे। रोटी दे दे। पर देनेकी इच्छा होगी तब तो आप सोचेंगे कि आखिर हम मन और बुद्धि कैसे दें? और यदि आपका देनेका मन नहीं होगा तो प्रश्न ही नहीं उठेगा कि मन, बुद्धिका समर्पण कैसे हो? पहले मनका रूप देखो। आपका मन प्यारसे भरा है। भगवान्‌ने प्यार दिया है। भागवतमें वर्णन आता है—भगवान्‌ने बाँसुरी बजायी। तो वंशीकी प्यारी-प्यारी ध्वनि गोपियोंके कानमें समा गयी और कानके रास्ते उनके हृदयमें पहुँच गयी। उनका हृदय उस अमृत-मय ध्वनिसे भर गया। वह अमृतमय ध्वनि, वह राग, वह रागिनी, वह रस, वह संगीत उनके रोम-रोमसे छलका। आँखोंसे छलका, ओठोंसे छलका, त्वचासे छलका और अपना दिया हुआ ही अमृत फिर भगवान् श्रीकृष्णने—वही वंशी-नादका अमृत—पीया। यह स्वभाव है: देकर लेना—देकर लेना।

आपके मनमें भगवान्‌ने प्यार दिया। सचमुच आपका मन प्यारका खजाना है। आपको मालूम पड़े कि न पड़े—मातासे प्रेम करते हैं—पितासे प्रेम करते हैं, मित्रसे प्रेम करते हैं, पत्नीसे प्रेम करते हैं, बच्चेसे प्रेम करते हैं, धनसे प्रेम करते हैं, अपने शरीरसे प्रेम करते हैं। इतना प्रेम करते हैं कि बुराईमें भी अच्छाई ढूँढ लेते हैं। आप देख लेना जिनका चेहरा अच्छा नहीं होता, वे जब शीशा देखते हैं तब कहते हैं—'हमारी नाक बहुत अच्छी है'—'हमारी आँखकी बनावट अच्छी है'—'हमारे ओठोंकी कट अच्छी है।' पूरा चेहरा अच्छा न हो तब भी उस चेहरेमें-से कहीं-न-कहींसे अच्छाई ढूँढ लेंगे। क्योंकि अपनेसे प्रेम होता है। प्रेमका स्वभाव ही यह है कि वह बुराईमें भी अच्छाई ढूँढ लें। तो आपका हृदय भगवान्‌ने प्यारसे भर दिया है। परन्तु आपके माप-

का जो यन्त्र है उसे गँदला-डबरा बना दिया है। जो अपने लोग हैं उनको नापनेके लिए आपके पास मशीन दूसरी है और जो बाहर-के लोग हैं उनको नापनेके लिए आपको मशीन दूसरी है। दूसरोंमें आपको बुराई ज्यादा दीखती है और अपनोंमें आपको अच्छाई बहुत ज्यादा दीखती है। यह जो आपके हृदयमें प्रेम भरा है, यही मनका स्वरूप है। आसक्ति मनका स्वरूप है। प्रेम मनका स्वरूप है। आप अपना प्यार भगवान्‌के प्रति अर्पित कीजिये। वह आपका प्यार माँग रहे हैं। असलमें वे पत्नीके रूपमें आपका प्यार लेते हैं। पुत्रके रूपमें वे आपका प्यार लेते हैं। सब रूपमें वही आपका प्यार लेते हैं। यह बात भी गीतामें है।

न तु मां अभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्तिते। ९.२३

सबके रूपमें भगवान् हैं। परन्तु हम सबके रूपमें रहनेवाले भगवान्‌को नहीं देखते। हम तो बहुत छोटी चीजको देखकर अपना प्यार देते हैं। जब आपका प्रेम, आपका प्यार सर्वव्यापी हो जायेगा तब आप भी बहुत बड़े हो जायेंगे। जबतक आपका प्रेम छोटी जगहपर है, आप छोटे हैं। जब आपका प्रेम बड़ी जगहपर होगा तो आप स्वयं बड़े हो जायेंगे।

अच्छा, आपसे बुद्धि माँगते हैं भगवान्! बुद्धि तो हमने कुर्सीको दे रखी है। कुरसिका माने जो धरतीपर हो। कु माने धरती। जो धरतीकी रसिक हो—हर समय धरतीको छूती रहे। हमारे गाँवमें तो कुर्सी नहीं बोलते खुरसी बोलते हैं। उसका पाँव आगे निकला होता है जैसे गाय बैल, घोड़ेका पाँव। पाँवमें खुर होता है। खुर-वाले चतुष्पाद होते हैं।—जैसे चतुष्पादका खुर होता है। उस खुर-सा कुर्सीका पाँव होता है तो वैसे ही इसे खुर-सी बोलते हैं। आपकी बुद्धि किस काममें लगती है? हमको एक अच्छी-सी कुरसी मिल जाय। यह रसिक नहीं है—'कु' रसिका है। कु माने

बुरी—जैसे आपकी पतिव्रता पत्नी हो और आपसे प्रेम करे तो उसको तो सुरसिका बोलेंगे—रसिका बोलेंगे। आपकी प्रेयसी है, पत्नी है, आपसे प्रेम करती है। वह रसिक है। लेकिन वेश्या क्या है ? वह कुरसिका है। शामको बैठे सुबह उलट गयी। सुबह बैठे शामको उलट गयी। कुर्सीकी क्या कीमत ? आपकी बुद्धि क्या चाहती है ? बदलनेवाली चीजें, गिरनेवाली चीजें, नष्ट होनेवाली चीजें—इनमें आपकी बुद्धि लगती है ?

भगवान् कहते हैं—बाबा, बुद्धि हमको दे दो। जो अविनाशी वस्तु है—उसमें बुद्धि लगाओ। पार्टीमें बुद्धि मत लगाओ। मानवतामें बुद्धि लगाओ। राष्ट्रमें बुद्धि लगाओ। पार्टीमें सबसे बड़ी भ्रष्टता यह है कि अपनी पार्टीका बदमाश भी बहुत भला है। और दूसरेकी पार्टीका भला भी बहुत बदमाश है। यह जो अपराध होता है। यह दौर्जन्य है। तो हम दूसरेके किये हुए अच्छे कामको भी बुरा बताने लगते हैं और अपने किये हुए बुरे कामको भी अच्छा बताने लगते हैं। यह पार्टीका है पाप। भगवान् कहते हैं—तुम अपनी बुद्धिको किसी पार्टीके घेरेमें मत डालो। मुझे अर्पित करो। सब पार्टीमें भगवान् हैं।

मय्यर्पित मनो बुद्धिः। बुद्धि माने विचार। बुद्धि तो पात्र है और उसमें विचारका वायन है। उपायन—भेंट-भरी है। बुद्धि वर्तन है और उसमें विचारके हीरे रखे जाते हैं। आप अपने विचार किसके लिए करते हैं ? ईश्वरके लिए आपके विचार हों। ईश्वरके लिए माने जो सबमें रहता है उसके सुखके लिए, उसकी भलाईके लिए उसके हितके लिए, आपके विचार हों। राष्ट्रकी, प्रान्तकी सीमा बदल जाती है। पहले बंगाल प्रान्त था। 'बँगला देश भी उसके अन्तर्गत था। अब कट गया। अब आगे नहीं कटेगा, यह पता नहीं और बढ़ भी सकता है। ऐसे ही राष्ट्रकी

सीमा। बचपनमें हम वर्माको अपनादेश जानते थे। आज जिसे पाकिस्तान कहते हैं उसे जवानीमें अपना देश जानते थे। तो ये राष्ट्रकी जो सीमाएँ होती हैं ये भी कल्पित होती हैं। समयपर वनती हैं, समयपर बिगड़ जाती हैं। परन्तु मानवता—सम्पूर्ण विश्वमें जितने मनुष्य हैं—सवके हृदयमें जीवात्मा है—सब हमारे भाई हैं। जिसकी आँख आगेकी ओर हो और बगलमें कान हो सामने नाक हो, मुँहमें दाँत हो, दो हाथ हों दो पाँव हो कितनी समानता है—वरावर ही तो हैं हम लोग। कितनी समता है हम लोगोंमें। यह स्त्री अलग—यह पुरुष अलग—यह काला अलग—यह गोरा अलग—यह गरीब अलग—यह धनी अलग—यह ठीक है। परन्तु सिर, नाक, आँख, जीभ, हाथ सबके हैं। मन सबके है। सब प्यार चाहते हैं। सव सत्य चाहते हैं। साँस लेनेके लिए सबको हवा चाहिए।

ईश्वरकी पूर्णतामें अर्पित कर दो—अपने विचार आप अपने विचारको क्यों काटते हो? अपने प्यारको क्यों काटते हो? मय्यर्पितमनोबुद्धिःका अर्थ है कि अपना प्यार और अपना विचार दोनों पूर्णता को दे दो। ईश्वर माने पूर्णता–जो सब जगह हो, सब समय हो, सब हो, सबमें हो–जैसे सबमें है, वैसे ही आपमें भी हो–उसका नाम ईश्वर होता है। ईश्वरके प्रति, पूर्णके प्रति अपने प्यार और अपने विचारको अर्पित कर दो। अब भगवान्का कहना है—देखो तुम हीरा, सोनासे प्रेम करोगे—सोना हो जाओगे, हीरा हो जाओगे। आप क्या पसन्द करते हैं? भगवान्से एक होना पसन्द करते हैं कि हीरेसे एक होना पसन्द करते हैं? माने जड़से प्रेम करोगे तो तुम स्वयं अपने प्रेमके साथ उस जड़में चले जाओगे और जड़के साथ तन्मय हो जाओगे और यदि चेतनके साथ प्रेम करोगे तो आपका प्रेम आपको अपनी जगहसे उठाकर चेतनमें डाल देगा।

आप चेतन रहना चाहते हैं—होशहवाशमें रहना चाहते हैं या बेहोश हीरा होना चाहते हैं ? हीरा पराधीन है। उसको देखकर दूसरे लोग सुखी होते हैं। यह भी ठीक है। परन्तु हमको देखकर कोई सुखी हो रहा है, इसका सुख भी हीरेको नहीं मिलता है। आखिर यह सुख तो मिले कि हमको देखकर कोई सुखी हो रहा है। आप जड़से प्रेम करके जड़ हो जाओगे। भगवान् आपको जड़ताकी ओरसे विमुख करके चेतनताकी ओर उन्मुख करना चाहते हैं। अपने प्यारको, अपने विचारको भगवान्‌की ओर उन्मुख कर दो, आपको भगवत्प्राप्ति होगी। भगवान् मिलेंगे। मिलेंगे भगवान्—इसमें कोई शंका नहीं। क्योंकि जो सब है वह सबको मिल सकता है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रियका भेद नहीं है। सबको मिल सकता है। सब जगह मिल सकता है। सब समय मिल सकता है। जो सब है, उसकी प्राप्तिके लिए, हम स्वर्गमें जायेंगे तब मिलेगा, यह कल्पना बिलकुल गलत है। वह स्वर्गमें नहीं मिलेगा, इसी धरतीपर मिलेगा।

हमारे जीवनमें समाधिकाल आयेगा तब परमात्मा मिलेगा। विक्षेपमें भी वही मिलेगा। समाधिमें भी वही मिलेगा। स्वर्गमें भी वही मिलेगा। धरतीपर भी वही मिलेगा। जो यहीं मिलता है, उसको आप मरनेके बादके लिए क्यों टालते हैं ? अभी प्राप्त कर लीजिये। **मर्म्यर्पित मामेव एस्यसि क्यों ?** बोले भाई देखो यदि इन सात रूपोंमें आप परमेश्वरको जान जाओगे तो आपके मनमें संशय नहीं रहेगा। संशय माने सपना। आप स्वप्नमें डूब रहे हैं। बुद्धि ठीक-ठीक काम नहीं कर रही है। आधी नींद और आधा जागना। इससे शयनमें भी वही है। शीञ् स्वप्ने धातु है और सम् उपसर्ग जोड़नेपर वह संशय बनता है। आप सपना देख रहे हैं। संशय, दुविधा—यह ठीक कि यह ठीक ? कहीं बुद्धि व्यवसायात्मिका निश्चयात्मिका बुद्धि होती ही नहीं। आप अपने

मन और बुद्धिको भगवान्‌में अर्पित कर दीजिये, सारे संशय मिट जायेंगे। संशयमें तो विनाश है। संशयात्मा विनश्यति।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।

आप संशय रखेंगे अपने मनमें तब इस लोकमें भी सुख नहीं है, परलोकमें भी सुख नहीं है। आपका लोक भी नहीं बनेगा, परलोक भी नहीं बनेगा। सुख भी नहीं बनेगा। इसलिए निःसन्देह—आप संशय छोड़ दीजिये। अविनाशी परमात्मा है। आपका स्वभाव, आत्मा परमात्मा है। कर्म परमात्मा है। नयी-नयी चीज बनानेवाला कर्म, भूतभावोद्भवकरः। नवीन-नवीन वस्तुओंका—कच्चे चावलको पका देनेवाला कर्म—माटीको चावल बना देनेवाला कर्म, धरतीमें-से कपास पैदा करके उससे कपड़ा बनानेवाला कर्म, जलती हुई खदानमें-से द्रव्य निकालकर उससे सोना बनानेवाला कर्म—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

अपने वीर्य, अपनी शक्ति, अपनी वीरताका आप उपयोग कीजिये। यह भी ईश्वरका रूप है। अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ—सब ईश्वर है। मत नहीं लगता है। अरे बाबा; मन लगनेकी फिकर मत करो। जो तुम्हारे अनुसार न चलता है उसको छोड़ दो। सुगम मार्ग है। बोले नहीं छोड़ सकते। नहीं छोड़ सकते तो अपने अनुरूप बनाना पड़ेगा—बनाना पड़ेगा तो अभ्यास करना पड़ेगा।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८.८
कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥८.९

अभ्यास करो। बच्चा अपनी माँको कहाँ पहचानता है। लोगोंने बताया यह माँ है, यह माँ है। दुहराते-दुहराते—लोगोंने स्वयं दुहराया, बच्चेने दुहराया और माँको पहचान लिया कि यह मेरी माँ है। आप यह मत समझना कि बच्चा पेटमें-से आता है तो अपनी माँको पहचानकर आता है। माँको माँके रूपमें पहचानना भी एक अभ्यास है। इसका नाम नाक है। इसका नाम कान है। इसका नाम दाँत है। यह क्या है? दुहराया ही तो गया है। अंग्रेजीवाले दूसरा दुहराते हैं, फारसीवाले दूसरा दुहराते हैं। अरबीवाले दूसरा दुहराते हैं। नाम अलग-अलग हैं। हमको तो बहुत आग्रह है न! यह नाक है। क्यों यह आग्रह हो गया? सुनते-सुनते, मानते-मानते अभ्यास हो गया कि इसका नाम नाक है। यह ऐसा ही है। ईश्वरका नाम राम है, कृष्ण है—अभ्यास तो करो। अभ्यास माने दुहराना। आवृत्ति। हम पहले 'मुहूर्त चिन्तामणि' पढ़ते थे। तो हमारे बाबा उस ग्रन्थका श्लोक पढ़ते थे। मुझे पढ़ाते थे। वे बोलते फिर मैं बोलता। वे कहते बोलो, फिर बोलो। एक सौ आठ बार बोलनेका एक नियम बना दिया। इतनी बार बोलोगे तो फिर भूलोगे नहीं। याद करो।

गौरीश्रवःकेतकपत्रभङ्गमाकृष्य हस्तेन ददन्मुखाग्रे।
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥१॥

गौरीके कानमें-से गणेशजीने सूँड़से केवड़ेका पत्र खींच लिया और खींचकर अपने मुँहमें लगा लिया वे पत्ते। थोड़ी देरके लिए दो दाँत-से लगने लगे। बोले बस-बस—ऐसी शोभावाले वह गणेश हमारा मङ्गल करें। बचपनमें ८-९ बरसके थे

और १०८ बार श्लोक बोलना पड़ता था। इसका नाम हुआ अभ्यास। रोज-रोज उसकी दुहरौनी करते थे—दुहराते थे। अभ्यास माने दुहरौनी। जो आपको इष्ट है, उसको आप दुहराइये। इष्ट माने जिसको आप चाहते हैं।

दुनियामें जो चीज कहीं नहीं हो, यदि आप अभ्यास करेंगे, ध्यान करेंगे, तो जो चीज नहीं है वह भी बन सकती है, फिर जो है उसका यदि आप अभ्यास करेंगे तो कहना ही क्या है! अपने मनको यदि वह चंचल होता है, एक जगह नहीं रहता है तो बार-बार एक जगह लगानेका अभ्यास कीजिये। बार-बार दुहराइये। **योगयुक्तेन चेतसा**। रतनगढ़में एक सज्जनका एक लड़का है। आजकल कलकत्तामें रहता है। अब तो बड़ा आदमी हो गया। बच्चा था तो दूध नहीं पीता था। उसके बाप उसे धरती-पर लिटाकर मुँह दबाकर थोड़ा, थोड़ा, दूध डालते। छः महीने उनको ऐसा करना पड़ा। फिर तो वह दूधके बिना रह नहीं सकता था। दूधका अभ्यास हो गया। दूध न मिले तो रोता था। आपका मन यदि एक जगह रहना पसन्द नहीं करता तो आप बार-बार अपनी ओरसे—यह भगवान्का रूप है—यह भगवान्का रूप है—बार-बार दुहराइये। उसमें मन लगेगा। बिना अभ्यासके योग नहीं होता। अभ्यास-अभ्यास कहना अलग है और अभ्यास करना पड़ता है, सो अलग है। अभ्यास करो। मनको दूसरी जगह मत जाने दो। परमात्माकी प्राप्ति होगी—इसी जीवनमें। मरनेके बादके लिए—हम वादेका सौदा नहीं करते। ठोस माल—अभी लो परमेश्वर!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

•

प्रवचन : ५

जैसे जीव शरीरके अन्दर रहता है, वैसे ईश्वको भी किसी सीमाके अन्दर बाँध लेना, यह ईश्वरके स्वरूपके अनुरूप नहीं है। देश, कालके घेरेमें जीव रहता है। जीवका उद्धार करनेके लिए—उसको देश, कालके घेरेसे बचानेके लिए परमेश्वर कभी देश, कालके घेरेमें आता है। यह उसकी करुणा है। उसको अवतार कहते हैं—जैसे कोई कुएँमें गिरा हो तो बाहरका आदमी जानबूझकर उसको निकालनेके लिए कुएँमें उतरता है। कोई जेलखानेमें हो तो प्रेमसे उसको आश्वासन देनेके लिए बाहरके लोग भी जेलमें जाते हैं। यह जीव बहुत ही सीमित क्षेत्रमें कैद हो गया है और उसमें इतना रम गया है, इतना रम गया है कि अपने घेरेसे बाहरकी वस्तुको वह पसन्द नहीं करता है। आओ परमेश्वरको इस शरीरमें भी देखें कहाँ है और बाहर भी देखें कि कहाँ है ?

उपनिषद्‌में इस प्रकार वर्णन प्राप्त है—'वह बाहर भी है, वह भीतर भी है। वह अमूर्त है, अजन्मा है। वह दिव्य है, वह परमात्मा है। वह इसी शरीरमें है।'

निराकार परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तो निराकारको पकड़नेके लिए आप कहाँ जायेंगे? आप जानते हैं जिन समाजोंमें, जिन मजहबोंमें, ईश्वरको नितान्त निराकार मानते हैं, जैसे ईसाई, मुसलमान, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, उनके यहाँ न तो भगवान्का दर्शन होता, न तो भगवान्का अवतार होता। वे भगवान्को नमस्कार करते हैं। वे भगवान्से प्रार्थना करते हैं और भगवान्की आज्ञा मानकर, विश्वास करके भगवान्की आज्ञापर—उसके अनुसार चलनेका प्रयास करते हैं। जैसे मुसलमान नमस्कार-प्रधान है। ईसाई प्रार्थना-प्रधान है और आर्यसमाजमें नमस्कार भी है, प्रार्थना भी है और अपने चरित्रके द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करनेका प्रयास है। जिसमें जो गुण हो उसे स्वीकार करना चाहिए। सनातन धर्मका जो परमेश्वर है वह केवल निराकार नहीं है, साकार भी है। केवल निर्गुण नहीं है, सगुण भी है। यह वैदिक परमेश्वर है। यह जो सब दिखायी पड़ता है वह एक ही सब बना हुआ है। एक ही है यह और बना हुआ है सब। ईसाई, मुसलमान और आर्यसमाजी यह नहीं मानते कि ईश्वर सब हो गया है। वे ऐसा मानते हैं कि ईश्वरने सब बनाया। बना नहीं है, बनाया है। आर्य समाजी प्रकृति भी मानते हैं, जीव भी मानते हैं, कर्म भी मानते हैं और ईश्वर जीवको कर्मके अनुसार भिन्न-भिन्न शरीरोंमें देखता भी है। ईसाई, मुसलमानका ईश्वर बना देता है। पहलेसे वे प्रकृति, जीव, कर्म इनको नहीं मानते। यह ईश्वरने अपने आदेशसे 'कुन' 'कुन', कहकर बना दिया। वैदिक धर्मका कहना है कि बना नहीं दिया या किसी चीजसे बनाया नहीं बल्कि स्वयं बन गया। 'स एकधा भवति, द्विधा भवति त्रिधा भवति—पञ्चधा भवति—सप्तधा भवति।' वही एक परमेश्वर सर्वरूपमें प्रकट हो जाता है। इसमें जगत्का उपादान भी वही,

निमित्त भी वही। माटी भी वही—बनानेवाला भी वही। कुम्हार भी वही—माटी भी वही। जुलाहा भी वही सूत भी वही। सुनार भी वही—सोना भी वही। यह वैदिक सनातन धर्मका सिद्धान्त है।

इसलिए हम जहाँ चलते हैं, जहाँ देखते हैं, जो करते हैं वहाँ परमेश्वर विद्यमान है। देखनेके लिए सिर्फ आँख चाहिए। इसीसे सर्वरूपमें परमेश्वर—

गतिर्भर्ताप्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥८.९

बारह बातें इस श्लोकमें कही गयी हैं—ईश्वरके बारेमें। ईश्वरकी ये विशेषताएँ हैं। वह गति है—हम जहाँ पहुँचेंगे वहीं है। वह हमारा भरण-पोषण करनेवाला भर्ता है। वही हमारा स्वामी है। वही हमारा साक्षी है। वही हमारा निवास-स्थान है। उसीका आश्रय है। वही हमारा सुहृद् है। उसीसे हमारा जन्म हुआ है—प्रभवः। इसीमें हमको मरके समाना है—प्रलय। स्थानं—उसीमें हम रह रहे हैं। वही हमारा खजाना है निधानं और वही अव्ययबीज है।

हमारा हाथ कैसे हिलता है? हमारी आँख कैसे देखती है? हमारे पाँव कैसे चलते हैं? हमारे शरीरमें ये सब क्रियाएँ अन्तर्यामी परमेश्वरके होनेसे ही होती हैं। हमारी साँस चलती है, हमारा मन काम करता है, यदि ईश्वरकी उपस्थिति न हों तो सब निष्क्रिय हो जायगा, सत्ताशून्य हो जायगा, ज्ञान शून्य हो जायगा। एक परमेश्वरके बिना जीवका कोई अस्तित्व नहीं है। आकाश न हो तो घटाकाश कहाँसे होगा? वायु न हो तो साँस कहाँसे होगी। साँस हम हैं तो हवा ईश्वर है। शीशेकी चमक हम हैं तो ईश्वर सूर्य है। ईश्वर हमसे बिलकुल दूर नहीं

है। आओ ईश्वरको देखें। उसे कहाँ देख सकते हैं? पहले अपने घरमें देख लीजिये और फिर बाहर देखने जाइये। यह साधनकी रीति है। महात्मा लोग दृष्टान्त देते हैं। किसी सज्जनको पारस पत्थर प्राप्त करनेकी बहुत इच्छा थी। वह भटकते थे। नदीके किनारे, पहाड़पर। अरे! कहीं पारस पत्थर मिले—पारस पत्थर मिले। उनको पहचान नहीं थी, भटकते थे। एक दिन कोई जानकार मिला। उसने उनको पारस पत्थरकी पहचान करा दी—देखो यह है। बरसों तक बिचारे भटकते रहे—अब मिला। जब वे पारस पत्थर लेकर अपने घरमें आये तो देखा उनके घरमें जो सील थी और लोढ़ा—सील-बट्टा पारस पत्थरके थे। बोले यह तो घरमें पहलेसे मौजूद है और मैं उसको जंगलमें, नदीमें, पहाड़में ढूँढता फिरा।

काहे रे बन खोजन जाई—गुरु नानकका वचन है। तुम ईश्वरको ढूँढनेके लिए जंगलमें क्यों जाते हो? आओ अपने भीतर ईश्वरको पहले पहचान लो। अगर अपने भीतर ईश्वरको पहचान लोगे तो सबके भीतर पहचान लोगे। अहंमें ईश्वरको नहीं पहचानोगे—तो इदंमें कहाँसे पहचानोगे? भावना करोगे—जब पकड़ छूट जायेगी तो ईश्वर भी छूट जायगा और ईश्वरको पहचान लोगे तो सब जगह पहचान लोगे। भीतर पहचाननेके लिए क्या करना? वह बताया है।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८.८

अभ्यास योगयुक्त—आपका चित्त कैसा होना चाहिए? अभ्यास योगयुक्त अभ्यास करना चाहिए। अभ्यासका बड़ा सामर्थ्य है। यह जो आपका शरीर है यह आतिवाहिक है। आतिवाहिक होता है वह देवता जो सूक्ष्म शरीरकी देहान्तर प्राप्तिमें सहायक

हो [अति वह् + ण्वुल्] यह पहाड़को छेदकर निकल सकता है। यह आसमानमें उड़ सकता है। यह धरतीके नीचे जा सकता है। अतिक्रम्य वहति। कोई इसको रोकनेवाला नहीं है। परन्तु आप इस हड्डी-मांस-चामसे मैं करके—अधिभौतिक सुखोंमें लिप्त हो गये हैं। यह अभ्यास ही पड़ गया कि आपने अपने आपको हड्डी-मांसका शरीर मान लिया। यह अभ्यासका चमत्कार है। एक मुसलमान मन्दिर तोड़ना चाहता है? एक हिन्दू नमाजके समय बाजा बजाकर उसको विक्षिप्त क्यों करना चाहता है? 'मान मान बन्धनमें आयो'—ऐसा बाहरसे विरोधी भाव ठूँस दिये गये हैं। सोचते-सोचते ऐसा ही हो गया है—नहीं तो मन्दिरमें जब ईश्वर रह सकता है तो मस्जिदमें क्यों नहीं रह सकता?

हमारे साधु दाढ़ी बढ़ावें तो उनको ईश्वर मिले और सिक्ख, मुसलमानकी दाढ़ी हो तो उसको ईश्वर न मिले। यह तो कल्पना ही बिल्कुल गलत है। मैं-मैं-मैं-का जो अभ्यास है वह बहुत बुरी तरहसे हमारे दिमागमें है। इसका दुरुपयोग न कर सदुपयोग करना चाहिए। बिना अभ्यासके जो सुख मिलता है उसको तामस सुख बोलते हैं। निद्रालस्य प्रमादोत्थम्—नींदमें बड़ा आराम मिला—आलस्य आया! बड़ा आराम मिला। प्रमाद कर गये—बड़ा आराम। यह तो तमोगुण है। इन्द्रिय और विषयके संयोगसे जो सुख मिलता है वह राजस सुख है। भोगमें जो सुखी है वह रजोगुणी है और निद्रा आलस्यमें जो सुखी है वह तमोगुणी है। माने तुम अन्धकारमें चले गये। रजोगुणी है माने विक्षिप्त है। जितना अधिक भोग भोगो उतना ही अधिक विक्षेप तुम्हारे जीवनमें आयेगा और जितना आलस्य करोगे, उतनी ही जड़ता जीवनमें आयेगी। सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिए अभ्यासकी जरूरत होती है।

अभ्यासाद् रमते यत्र—दुखान्तं च निगच्छति।

आप अपने अभ्याससे एक नया सुख पैदा करो। तुमने परम्परासे जो चला आरहा है, जो सीखा—बहुत बढ़िया और उसमें नया-नया आविष्कार भी करो। नहीं तो तुम्हारी बुद्धि सो जायेगी। बुद्धिमें जड़ता आजायेगी। जैसी चाय पीते आये हो वैसी ही पीओगे। अरे भाई इसमें ऐसा आविष्कार करो कि लोगोंको नया आकर्षण हो। कपड़ेकी ऐसी डिजाइन बनाओ कि लोग उसपर टूट पड़ें। नया-नया आविष्कार चाहिए। तो आविष्कारके लिए अभ्यास चाहिए। बिना अभ्यासके उसके एक-एक अणुकी—उस वस्तुके एक-एक कणकी जानकारी कैसे प्राप्त होगी ? उसमें यह है, यह है—**अभ्यासात् रमते यत्र**। उसमें अपने मनको रमा दो। अभ्यास माने **तमास्थितो यत्नोऽभ्यासः**। आप जिसको अपना इष्ट समझते हैं, प्रिय समझते हैं, उसमें स्थित होनेके लिए, प्रयत्न कीजिये। बार-बार प्रयत्न कीजिये। इसका नाम होता है अभ्यास योग। पहलवान बननेके लिए कितना अभ्यास करना पड़ता है। दो-दो हजार दण्ड और बैठक करते हैं। बिना कुछ किये गामा थोड़े ही बना जाता है। सर्टिफिकेट मिलनेसे अच्छा वकील, अच्छा डॉक्टर नहीं हो जाता—उसके लिए अभ्यास करना पड़ता है। आप अपनेसे बड़े जानकारके पास, बड़े अनुभवा-के पास रहकर अभ्यास कीजिये। मन डांवाडोल न हो। नान्य-गामिना आपका ज्ञान—चेतस् माने ज्ञान होता है संस्कृतमें—चिति संज्ञाने। आपका ज्ञान संग्रह करता है। वैसे ज्ञान असंग होता है। आपकी आँख असंग है। आप कितनी चीज देखते हो और छोड़ते जाते हो। अबतक कितनी चीजें खायी हैं। कोई याद करके बता सकता है कि बचपनसे अबतक क्या-क्या खाया है ? क्या-क्या देखा है ? क्या-क्या छूया है ? क्या-क्या पीया है ?

कहाँ-कहाँ गये हैं। ज्ञान असंग होता है। अपने विषयको वह छोड़ता जाता है। रूप बदलता है, आँख नहीं बदलती। आँख ज्ञान है। ज्ञानमें असंगता रहती है, परन्तु जब उपादेय बुद्धिसे कि यह हमें सीखना है—तब वह संज्ञान हो जायेगा। संज्ञान होनेसे उसका नाम, उसका रूप आपके दिलमें बैठेगा।

यह जो आपका हृदय है यह संस्कार पकड़नेवाला यन्त्र है। संस्कृतमें हृद् शब्दका अर्थ होता है—हरति संस्कारान् इति हृत्। यह हृ धातुसे जो हरिमें है, हरमें है—उसी धातुसे तुक् प्रत्यय हो करके हृत् शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है—किसीको प्रेमसे देखो और उसे लाकर अपने मनमें बैठा लो। हृ+क्विप्, तुक्=हरण करनेवाला। ग्रहण करनेवाला। ले जानेवाला। आकर्षक, मोहक। संस्कारको आहरण करनेके कारण—हृदयको हृदय कहते हैं। (हृ+कयन्, दुक् आगम=दिल, मन, अन्तःकरण। छाती, वक्षःस्थल। किसी वस्तुका सार या मर्म। गुप्त विज्ञान। हृद्+इ+अच्=परब्रह्म, आत्मा, बहुत ही प्रिय व्यक्ति) तो आपका चेतस है संज्ञानका पुञ्ज—इसको कैसा बनाओ—नान्यगामिना। जिस विषयको ठीक-ठीक आप धारण करना चाहते हो वहाँसे इसे हटने मत दीजिये।

एक बात और है। आप अपने बेटेके बारे में कितनी देरतक सोचते हो? सोच सकते हो? धनके बारेमें कितनी देरतक सोच सकते हो? लाखों रुपये गिननेमें एक गलती भी नहीं मिलती। कितना एकाग्र होता है आपका मन! आपके पास शक्ति कितनी है। अपने प्यारेकी याद करते जाओ—करते जाओ। अपने प्यारेसे बात करते जाओ—करते जाओ। जहाँ आपका मन चञ्चल होता है, इसका अर्थ है कि आपके लिए वह विषय रुचिकर नहीं है। आपका वह प्रिय नहीं है। प्रिय होता तो आपका मन वहाँसे

हटना क्यों पसन्द करता ? रास्तेमें खटखट हुई, देख लिया, फिर वहीं आगये, देख लिया फिर वहीं आ गये। ये योगदर्शनकी दो बातें हैं।

गीताकी भी दो बातें—अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। अभ्यास और वैराग्य। नान्यगामिना चेतसा यह हो गया वैराग्य। दूसरेसे रागद्वेष नहीं है। रागद्वेषका लोप सुषुप्तिमें भी नहीं होता। मालूम नहीं पड़ता। लेकिन कल जिससे राग था, जागनेके बाद उसीसे राग रहता है। कल जिससे द्वेष था, जागनेके बाद उसीसे द्वेष होता है। मतलब क्या हुआ कि राग-द्वेषका बीज सुषुप्तिमें भी रहता है।

किसीकी हिंसा करनेका मन होता है। यह द्वेषकी क्रिया हुई—मार डालें किसीको मारनेका मन तो नहीं होता, लेकिन प्रतिहिंसाकी वृत्ति होती है। इन्होंने हमारा बिगाड़ा है तो हम भी इनका बिगाड़ दें। हमको इन्होंने जेलमें डाला तो हम भी इनको जेलमें डालें। यह प्रतिहिंसाकी वृत्ति होती है। आपने ईसाका वह वचन सुना होगा कि अगर तुम्हारे एक गालपर कोई थप्पड़ लगावे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। यह है साधुकी मनोवृत्ति। यह संसारी लोगोंका नहीं है। हिंसा करना नितान्त निन्दित है और उससे कम निन्दित है प्रतिहिंसा। यदि चित्तमें अहिंसा हो तब तो कहना ही क्या! गांधीजीके आश्रममें किसीने घड़ीकी चोरी की—उन्होंने कहा कि बाबा इसको पकड़ो मत—मारो मत क्योंकि इसको इतनी जरूरत है कि चोरी करता है और हमें इसकी बिलकुल जरूरत नहीं है। हम तो इसको सोनेमें छोड़कर चले गये थे। हमारी जरूरत कम है, उसकी जरूरत ज्यादा है। उसको घड़ी दे दो। यह है सत्पुरुषकी मनोवृत्ति बिना समताके सौजन्य स्थिर नहीं हो सकता। आपने गीता पढ़ी।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥६.९

आपकी बुद्धिमें समता है कि नहीं, बिना सम हुए आपका चित्त एकाग्र नहीं होगा। कभी राग खींचेगा, कभी द्वेष खींचेगा। दो बात हुई एक तो अभ्यास बढ़ाया और दूसरे चित्तको दूसरी जगह राग-द्वेषके विषयमें जानेसे रोक दिया और तीसरे अनुचिन्तयन्—परमात्माका अनुचिन्तन करो। यह तीसरी बात है। योगदर्शनमें अभ्यास है, वैराग्य है—अनुचिन्तन नहीं है। अनुचिन्तन बहुत बाह्य स्तरपर होता है। स्थूल आलम्बनका चिन्तन, सूक्ष्म आलम्बनका चिन्तन, आनन्द आलम्बनका चिन्तन, ये सबसे संप्रज्ञात समाधिके स्थूल भाग हैं और अस्मिताका चिन्तन सूक्ष्मतम भागमें है। सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम और असंप्रज्ञात समाधिमें वह भी नहीं है। परन्तु यह गीता है। इसमें अनुचिन्तनकी बड़ी महिमा है। अनुचिन्तन क्या होता है? आओ आनन्द लें।

श्रीमद्भागवतका सप्ताह कभी करते हैं तो दशम स्कन्ध, एकादश स्कन्धका आनन्द लेते हैं। जो बाकी बचता है उसे घण्टे भरमें पूरा कर लेते हैं। पुस्तक पूरी करना धर्मके अन्तर्गत है। उसका रसास्वादन करना फलके अन्तर्गत है। धर्म है पुस्तक पूरी करना और धर्मका फल है उसका आनन्द लेना।

रसास्वादन करो। अनुचिन्तन क्या होता है? तुम्हारे कोई गुरु हैं कि नहीं? अर्थात् तुम्हारे आदरणीय, श्रद्धेय—जिनसे तुम सीखते हो—ऐसे महानुभाव हैं कि नहीं? अनुचिन्तनका अर्थ है—जैसा वे चिन्तन करते हैं। उसके अनुसार तुम चिन्तन करो। अनु माने अनुसार—जैसे बड़े भाईका छोटा भाई अनुज होता है।

जैसे आगे चलनेवाले-के पीछे चलनेवाला अनुग होता है। वैसे चिन्तनके पीछे चलनेवाला अनुचिन्तन होता है।

प्रथम मुनिन हरि कीरति गाई।
तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

महत्माओंने जैसा चिन्तन किया है, उनके दिखाये हुए रास्तेसे परमात्माका चिन्तन करो। अनुचिन्तन—भक्त लोग एक बहुत बढ़िया बात कहते हैं। कहते हैं—परमेश्वरका चिन्तन करो—उसमें जीवको घूमनेके लिए आसमान बनाया है। साँस लेनेके लिए हवा बनायी। देखनेके लिए सूर्य-चन्द्रमा बनाया। जीवित रहनेके लिए, पीनेके लिए जल बनाया। बसनेके लिए धरती बनायी और देखनेके लिए आँख दी, सुननेके लिए कान दिया, बोलनेके लिए जीभ दी। प्रेम करनेके लिए दिया दिल। नया-नया काम करनेके लिए प्रतिभाशाली मस्तिष्क दिया। ईश्वरने चिन्तन करके कि तुम्हारे काम क्या-क्या चीज आयेगी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके लिए, जीनेके लिए, प्यार करनेके लिए, विचार करनेके लिए। इतना उपकरण, इतना औजार, इतनी सामग्री दिया। जिस घरमें तुमको रखा, उसमें सब तरहकी मशीन लगा दो। संगीत सुन लो, सिनेमा देख लो। कानसे संगीत सुनते हैं। आँखसे सिनेमा देखते हैं। तुम कोमल कठोरका स्पर्श कर लो, जो भोजन चाहिए—कड़वा, खट्टा, मीठा, सब खानेके लिए तुम्हारे पास तैयार है। वह दूकानमें नहीं मिलता है, वह रसोईघरमें नहीं बनता। तुम्हें ऐसा घर दिया है—रहनेके लिए जिसमें सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यह है उसकी कृपा, उसकी करुणा। उस घरमें नयी बात सोच सकते हैं। प्यार बरस सकते हैं। यदि उससे मिलना चाहें तो मिलनेके लिए वाहन भी दे दिया है। आप उसके घर जा सकते हैं—उसे अपने घर बुला सकते हैं। उसने सोच-विचारकर आपको

सब दिया। आपके मनमें कभी कृतज्ञता उभरती है इस सबके लिए। आप ईश्वरके प्रति कृतघ्न न हों।

अनुचिन्तयन्—जैसे ईश्वरने आपका चिन्तन किया है, वैसे आप भी उसका अनुचिन्तन कीजिये। उसने आपको प्यार दिया है। आप उसको प्यार दीजिये। उसने आपको घर दिया है, आप भी उसे घर दीजिये। उसने आपको आँख दी है, आप उसको भी आँख दीजिये। उसके सामने ले जाकर डाल दीजिये अपने आपको। अनुचिन्तयन्—आप ईश्वरके शीलस्वभावका उसके स्वरूपका चिन्तन कीजिये। यह आपसे कितना प्रेम करता है। जब आप अपने ऊपर बरसनेवाले ईश्वरके प्रेमका चिन्तन करेंगे तो आपके हृदयमें अपने आप ईश्वरसे प्रेम हो जायेगा।

संस्कृत भाषामें एक 'प्रीति-सन्दर्भ' नामका ग्रन्थ है। एक वल्लभ सम्प्रदायका भी 'प्रीति-सन्दर्भ' है—एक चैतन्य सम्प्रदायका भी 'प्रीति-सन्दर्भ' है। वल्लभ सम्प्रदायवाला मैंने हस्तलिखित ही देखा था। अभी सम्भवतः प्रकाशमें नहीं आया और चैतन्य महाप्रभुके सम्प्रदायका तो प्रकाशित हो चुका है। प्रश्न यह उठाया कि प्रेम कैसे बढ़ता है? प्रीति बढ़नेका उपाय क्या है? प्रीतिका उद्दीपन क्या है? जैसे आलम्बन, उद्दीपन दो होता है। यमुनाका तट हो, बालुकामय पुलिन हो—वंशीधर हो, गौएँ चर रही हों, ग्वालबाल खेल रहे हों, यह सब उद्दीपन है। उसमें वंशीकी धुन सुनायी पड़ती है, यह भी उद्दीपन है। वहाँ श्रीकृष्णके शरीरकी गन्ध फैल गयी हो, यह भी उद्दीपन है। लेकिन वह जो श्रीकृष्णका श्रीविग्रह आपके सामने प्रकट होगा वह आलम्बन है। प्रेम एक रस है, इसका उद्दीपन क्या है? यदि आपके मनमें यह विश्वास जमेगा कि सामनेवाला—हमसे बहुत प्रेम करता है—'पानी देखकर पानी बढ़ता है' कहावत है। समुद्रमें सबसे अधिक वर्षा होती है।

पानी देखकर पानी बरसता है। यदि आपके मनमें यह विश्वास हो गया कि सामनेवाला हमसे बहुत प्रेम करता है तो अनचाहे आप उससे प्रेम करने लगेंगे। इसीसे प्रेमका बाप विश्वास है।

पहले विश्वास होता है, फिर प्रेम होता है। यदि संशय हो जाय तो प्रेमकी नदी सूख जायेगी। प्रेमकी गंगा सूख जायेगी। संशयमें विश्वास नहीं बनता। पता नहीं कब धोखा दे जाय। सावधान रहेंगे। अपनेको पकड़कर रखेंगे कि कहीं हम इसकी कैदमें फँस न जायँ और संशय नहीं रहेगा, पूरा विश्वास हो जायेगा तो अपनेको मिला देनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होगी। आपके मनमें ईश्वरपर विश्वास है। उसकी कोई क्रिया बुरी नहीं लगेगी। प्रेममें चाँटा भी लगा देते हैं। प्रेममें डाँट भी देते हैं। प्रेममें कुछ छीन भी लेते हैं। पर प्रेमपर विश्वास होना चाहिए कि जो कुछ हो रहा है सो सब प्रेमसे हो रहा है।

अनुचिन्तयन्‌का अर्थ यह है कि ईश्वर हमसे कितना प्रेम कर रहा है। यह बात आप देखो, इसका आनन्द लो। फिर क्या होगा? आप प्रेमी नहीं रहेंगे। अलग होकर प्रेमी नहीं रहेंगे। आप उसके पास पहुँच जायेंगे। प्रेम आपको प्रियतमसे अलग नहीं रहने देगा। प्रेमीके पास ले जाकर मिला देगा। प्रेम मिलाता है। लौकिक प्रेममें तीन दल होते हैं ऐसा मानते हैं। त्रिदल प्रेम होता है। त्रिदल माने प्रेमी अलग होता है, प्रेम अलग होता है; प्रियतम अलग होता है और जो ईश्वरसे प्रेम होता है उसमें प्रेमी प्रेम और प्रियतम, ये तीन दल नहीं होते। प्रेमी प्रियतम हो जाता है। प्रियतम प्रेमी हो जाता है। प्रेम ही प्रेमी है। प्रेम ही प्रियतम है। इससे आपको परम पुरुषकी प्राप्ति होगी। परम पुरुष माने पुरुषोत्तम। वह दिव्य है। दिव्योः अमूर्तः पुरुषः। परमेश्वरका प्रेम देखिये, आपपर कितना प्रेम है—आपके ध्यानमें यह बात

आती है। आप उसे अपने गोदसे उतारकर फेंक देते हैं। परन्तु वह आपको अपनी गोदमें रखता है। ईश्वरने कभी आपको अपनी गोदसे उतारा नहीं।

चन्द्रसूर्ययोः—वह हमें अपनी आँखोंसे ओझल नहीं करता है। वह साँस-साँसमें हमको साँस—प्राण देता है वह हमारे चिन्तनमें चेतन बनकर रहता है। हमारे प्यार-प्यारमें आनन्द बनकर रहता है। हमारे अस्तित्वमें उसकी सत्ता विकसित होती है। परमेश्वरका आप चिन्तन कीजिये, आप परमेश्वरके पास पहुँच जायेंगे। श्रद्धामयोऽयं पुरुषोः—गीतामें आपने पढ़ा होगा। आपकी श्रद्धा परमेश्वर पर है, आपको अभी परमेश्वर मिलेगा। वेदान्ती लोग इसको दूसरी तरहसे बोलते हैं।

एक बहुत गुप्त बात है। आप क्या हैं? आप वह नहीं हैं जो कुरसीपर बैठे हुए हैं। आप वह नहीं हैं जो कपड़े पहने हुए हैं। आप वह नहीं हैं जो आपका स्त्री-पुरुषका शरीर है। आप कौन हैं? आपका मन क्या है? जो आपका मन है, वहो आप हैं।

यत्तच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यः।

यदि आपका मन राम है तो आप राम हैं। यदि आपका मन कृष्ण है तो आप कृष्ण हैं। यदि आपका मन राधा है तो आप राधा हैं। यदि आपका मन सीता है तो आप सोता हैं। यदि आपके मनमें चोर है, व्यभिचारी है तो आप चोर हैं, व्यभिचारी हैं। यह एक गुप्त बात मानते हैं—वेदान्ती लोग। आओ आप दिव्य पुरुषके पास चलो। कैसा है वह?

कविं पुराणमनुशासितार
मणो रणीयांसमनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप
मादित्वर्णं तमसः परस्तात् ॥८.९

अर्जुनको देखते-देखते श्रीकृष्ण छन्द ही भूल गये। आपके ध्यानमें यह बात आयी या नहीं? पुराणमनुशासितारं—ऐसे बोलनेपर छन्दमें एक मात्रा कम होती है। पुराणम् अनुशासितारम् ऐसे बोलेंगे। अलग—तब तो छन्द पूरा होगा। गानेवाले इसे पूरा कर सकते हैं। इसीसे मालूम पड़ता है कि श्रीकृष्ण भी संगीतके टोनमें, लयमें, बोल रहे हैं। साहित्य-शास्त्रका जैसा नियम है, उस नियमके अनुसार नहीं है। व्याकरणमें तो दोष नहीं है। परन्तु काव्यमें दोष है। यह दोष कहाँसे आया? जैसे संगीत बोलनेवाले आ··आ··करके पदको पूरा कर देते हैं। भजन, पद चाहे कैसा भी हो वे अपने आलापसे उसको पूरा करते हैं। **कविं पुराणम् अनुशासितारं**—यह पुराणम् संगीतके आलापसे पूरा होगा। इसका अर्थ है श्रीकृष्ण गा रहे हैं।

बाँसुरी बजायी वृन्दावनमें, शंख बजाया कुरुक्षेत्रमें, परन्तु यह गीत, यह संगीत, यह गीता शंखध्वनि नहीं है। यह वंशी-ध्वनि नहीं है। यह तो चिदानन्दमयी ध्वनि है। शंखध्वनिमें वीर होता है। बाँसुरीमें शृंगार होता है और इसमें आनन्द और ज्ञान दोनोंका मेल है। **कविं पुराणम् अनुशासितारं**—परमेश्वर कैसा है? बोले कवि है। वैसे कविकी परिभाषा ही बना रखी है। **कवयः क्रान्तदर्शिनः** कविको आँखके सामनेका नहीं सूझता है। क्रान्त माने अतिक्रान्त। जो आँखोंसे ओझल है—उसका वर्णन करेंगे। उनके मनमें ऐसा प्यार भरा है—जैसे देखकर आये हों। किसीके दिलमें तुम घुसे, वहाँ प्यार देखकर आये। प्यारका वर्णन करते हैं—सौजन्य, दौर्जन्यका वर्णन करते हैं। रावणका वर्णन करते हैं तो मालूम होता है,

रावणसे एक हो गये—रामका वर्णन करते हैं तो मालूम पड़ता है, रामसे एक हो गये। रामकी बात कवि बोलता है। रावणकी बात कवि बोलता है। दोनोंकी बात तो आँखोंसे ओझल है। न रामकी सुनकर आये न रावणकी। रावणके दिलमें बैठे तो रावणकी बोले और रावणको अपने दिलमें बैठा लिया तो रावण हो गये और रामको अपने दिलमें बैठाया—राम हो गये। इसको बोलते हैं कवि। यह सातवें आसमानकी—सातवें पातालकी बात ले आवें। दूसरे दिलकी बात ले आवें। कवयः क्रान्तदर्शिनः। कवि किसको कहते हैं कि जो क्रान्तदर्शी हो। 'जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि।' कविकी गति वहाँ है। तो परमेश्वरको कवि कहा। 'ईशावास्य उपनिषद्'में भी परमेश्वरको कवि कहा है।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्य-
तोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

परमेश्वर कवि है। परन्तु कविका स्वाभाविक अर्थ है। वस्तुके यथार्थ स्वरूपका वर्णन करनेमें निपुण। स्वभावोक्ति अलंकार है वह सबसे उत्तम अलंकार है। अतिशयोक्ति, वक्रोक्ति, उपमा, अनन्वय, ये अलंकार अलंकार नहीं हैं। रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार नहीं है। अलंकार है स्वभावोक्ति। स्वभावोक्ति रसो चारु यथावत् वस्तुवर्णनम्। वस्तुका यथार्थ वर्णन होना चाहिए। उसमें नमक-मिर्च लगाकर वर्णन नहीं करना चाहिए। कवि वह है जो वस्तुका यथार्थ वर्णन करें। कं सुखं वाति—जो सुखका स्रोत, सुखका झरना, सुखकी गंगा बहा दे दुनियामें। जिसकी वाणीसे सुख ही सुख बरसे। रमणीय पदविन्यास जिसमें हो। रमणीय वाक्य, उसको काव्य बोलते हैं। अर्थवत् हो, रमणीय हो। तो परमेश्वर कैसा हैं? वेदमें वर्णन है—परमेश्वर

अकेला था एकान्तमें था, बोला—हमारा समय कैसे कटे? उसने काव्य-रचना प्रारम्भ की। वह तो परमेश्वरका काव्य था तो अर्थवाला था। आजकलके कवि बोलते हैं तो वह केवल शब्द ही रह जाता है न!

यह पेड़ क्या है, यह फूल क्या है, यह फल क्या है? आपकी बत्तीसी देखनेका मन होता है, आपकी प्यार भरी आँखें देखनेका मन होता है। आपकी चमक देखनेका मन होता है। यह क्या है? यह ईश्वरकी कविता है। एक छोटी-सी लड़की लेकर कोई सज्जन गुरुनानकके पास गये। गुरुनानक उस समय लिख रहे थे। उन्होंने लिखना बन्द कर दिया और उस लड़कीकी ओर देखने लगे। पिताने पूछा कि गुरु साहब आप क्या देखते हैं? उन्होंने कहा—कारीगरकी रचना देख रहा हूँ। कितना बढ़िया होगा कारीगर, जिसने बराबर-बराबर कान बनाये हैं, छोटे बड़े नहीं! आँख कितनी बराबर नाकके छेद कितने बराबर। हाथ एक लम्बा एक छोटा हो तो कैसा लगे! वह क्या कारीगर है! उस शिल्पीकी यह रचना देखो! ईश्वर गाता है। काव्य करता है। **पश्य देवस्य काव्यम्**—यह परमेश्वरकी कविता है। यह अमरकृति है परमेश्वरकी। कभी मरती नहीं और कभी बुड्ढी भी नहीं होती। वैसे भाष्यकार लोग कवि शब्दका अर्थ करते हैं सर्वज्ञ। कालिदासकी प्रसिद्धि है जिसे किसीने देखा नहीं, उसका वर्णन करके सामने रख दिया। जब हम ध्यानमें एकाग्र होते हैं तो अनदेखी चीज भी दीखने लगती है।

आओ, आप जिसकी शरण लेना चाहते हैं, जिसका ध्यान करना चाहते हैं—वह कैसा है? वह अज्ञानी नहीं है, अल्पज्ञ भी नहीं है, वह सर्वज्ञ है। तुम्हारे दिलकी सब बात जानता है। जो तुम जानते हो वह भी जानता है और जो तुम नहीं जानते वह भी जानता है। जो तुम भूल चुके हो उसको भी

जानता है और आगे तुम जानोगे उसको भी जानता है। वह कवि है। सर्वज्ञ है। अज्ञानीकी शरण नहीं लेता—अज्ञानीका चिन्तन नहीं करता। उस सर्वज्ञका चिन्तन करना, जो सब कुछ जानता है।

पुराणम्—माने पुराति नवं एव इति पुराणम् पहले भी पुराण शब्दका यह नैरुक्त अर्थ है। पुराने जमानेमें भी वह नया था। अब भी वह नया है, आगे भी नया रहेगा। नित्य नूतन है, चिर सुकुमार है। चिर सुन्दर है। अनादि है। ऐसा सर्वज्ञ है। अनुशासिता-सर्वज्ञ भी हो और बुड्ढा भी हो और उसका घरमें हुकुम न चलता हो तो ! बेटे, नाती, पोते न मानते हों। बहू-बेटी न मानती हों, उसकी प्रजा उसकी बात न मानती हों तो—वह सर्वज्ञ, पुराना, अनुभवी ही नहीं है अनुशासिता भी है। वह अनुशासन करता है। सूर्य और चन्द्रमा उसकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं। आग जलती है, हवा बहती है, तारे छिटकते हैं। वर्षा ऋतुमें वर्षा होती है, ठण्डकमें ठण्ड पड़ती है। यह उसका अनुशासन है। मौत भी उसकी आज्ञाका पालन करती है।

पकड़ लें उसे-नहीं, अणोरणीयांसम् वह अणुसे भी अणु है। यदि परमेश्वर अणु होता तो अबतक वैज्ञानिक लोग तोड़ डालते उसको। उसमें-से फिर आटम-बम निकलता। ये तो अणुको तोड़कर रख देते हैं। वह परमाणु है ? नहीं परमाणु भी नहीं है। परमाणुमें अलगाव होता है। अणीयांसं—अणुसे भी अत्यन्त अणु है—वह किसी यन्त्रके द्वारा पकड़ा नहीं जा सकता। बहुत सूक्ष्म है। उसे कोई जेलमें—कैदमें नहीं डाल सकता।

कुछ हमारे काम भी तो आना चाहिए। वह कवि है, ठीक है। पुराण है, सो ठीक। अनुशासिता है यह भी ठीक। किन्तु उसका अनु-शासिता होना हमारे किस कामका ? बोले—सर्वस्य धातारम्।

धाय आपको दूध पिलाती थी। बच्चेको जैसे दूध पिलाती है वैसे सबको वही दूध पिलाता है। गेहूँमें-से जो दूध निकलता है, वह क्या आपने उसमें डाला है? लेबोरेटरीमें निर्मित है? अंगूरमें-से जो रस निकलता है, आममें-से जो रस निकलता है। वह किसका डाला हुआ है?—सर्वस्य धातारम्।

सबको वही दूध पिलाता है, सबको वही धारण करता है। धारणा—अपनी-अपनी मर्यादामें सबको रखता है। समुद्र, धरतीको डुबोता नहीं है। वायु चट्टानको उड़ाता नहीं है। सूर्य और चन्द्रमासे जितनी दूरीपर समुद्रको रख दिया है, उतनी दूरीपर समुद्र रहता है। अगर थोड़ा पास हो जाये तो चन्द्रमा जिस दिन पूर्ण होगा, उस दिन समुद्र इतना उछले कि शहरके शहर डूब जायें। सूर्यको जितनी दूरीपर बैठा दिया है, अगर सूर्य उससे थोड़ा पास हो जाये तो धरती जल जाये। सबका पालन-पोषण करनेवाला वही है।

सर्वस्य धातारं—अब अपनी बुद्धिमें उसका एक रूप बैठावें—अचिन्त्यरूपा आपकी चिन्तन शक्ति वहाँ पहुँच नहीं सकती। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। आओ इसका अनुचिन्तन करें। हमने आपके मनोरंजनके लिए यह बात नहीं सुनायी। ईश्वरका अनुचिन्तन—आप अपने मनको जगाकर कीजिये–सुलाकर मत कीजिये। मनको सुलाकर चिन्तन नहीं होता। मनको जगाकर चिन्तन होता है। अपने मनको क्रियाशील रखकर, उसकी वृत्तियोंको जगाकर ईश्वरके बारेमें ऐसा अनुचिन्तन कीजिये। जैसे हवाई जहाज आपको अभीष्ट स्थलपर पहुँचाता है वैसे आपकी वृत्ति परमेश्वरके पास पहुँचा देगी।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

प्रवचन : ६

गीताके आठवें अध्यायमें परमात्माके अनुचिन्तन और अनुस्मरण दोनोंकी महिमा और दोनोंका फल बताया गया है। अनुचिन्तन और अनुस्मरण, चिन्तनमें जो चिन्तन करता है, उसका बल काम करता है और स्मरणमें जो सुनी-देखी, अनुभव की हुई वस्तु होती है, उस वस्तुका स्फुरण, काम करता है। कर्त्ताकी प्रधानतासे होता है चिन्तन और अनुभूत वस्तुकी प्रधानतासे होता है स्मरण। चिन्तन हमें जोर लगाकर करना चाहिए। जब अनुभव हो जायेगा तो स्मरण अपने आप होने लगेगा। आपको अपने प्रिय,

अप्रिय दोनोंका स्मरण बिना बल लगाये एकाएक हो जाता है? माँकी याद आती है, बापकी याद आती है, अपने मित्रकी, पुत्रकी याद आती है। यह स्मरण जो बार-बार सुना हुआ है, बार-बार देखा हुआ है, जिस दुःखका, सुखका अनुभव हुआ है, उसका स्मरण अपने हृदयमें उतरता है। स्मरण अवतार है। चिन्तन उतार है। चिन्तन हमारी ओरसे उस वस्तुका किया जाता है जिसका हम चिन्तन करना चाहते हैं। परं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्। पहले दिया चिन्तन और बादमें दिया अनुस्मरण।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥७.९॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥१०॥
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यं प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।१४।

पहले बात कही गयी अनुचिन्तनकी और बादमें अनुस्मरणकी। स्मरति यह क्रम बना। परमेश्वरका निरूपण करते हुए—जो उनके गुण बताये हैं—वे कवि हैं, हमारे हृदयको जानते हैं—सर्वज्ञ हैं। कवि माने क्रान्तदर्शी है। हमारे हृदयके अन्तःस्थलमें, गम्भीर अन्तःस्थलमें जो बातें छिपी हैं, जिनको हम अभी नहीं जानते हैं, उनको भी वे जानते हैं। सबकी आदि होती है और परमेश्वर अनादि होता है, ईश्वर कब पैदा हुआ?

ईश्वर किसने बनाया ? यह आप जान सकते हैं क्या ? कल्पनाकी बात छोड़ दीजिये। क्या अपनी आदि जान सकते हैं ? आप कब बने। आपको किसने बनाया ? अपनी उत्पत्ति कोई जान सकता है ? उत्पत्ति जाननेके लिए उत्पत्तिसे पहले होना आवश्यक है। आप अपनी उत्पत्ति भी नहीं जान सकते क्योंकि यदि उत्पत्ति जानते हैं तो उत्पत्तिसे पहले आप हैं। अब आप ईश्वरके बारेमें सोचते हैं। आप अपनी आदि तो जान नहीं सकते ? एक बाबू कहते हैं—'हमारे सनातनधर्मी लोग जिस बातको नहीं जान पाते हैं, उसको अनादि कह देते हैं।' ऐसा नहीं है। एक दर्शनका नियम है कि उसमें अनादि क्या होता है ? अनुभवके क्षेत्रमें अपनी उत्पत्ति और अपनी मृत्यु दोनों कोई देख नहीं सकता। अनुभव नहीं कर सकता। इसलिए अपना आत्मा अनादि है और अनन्त है। इसलिए नहीं कि हम जान नहीं पाते। जानते तो हैं कि हम हैं परन्तु अपनी उत्पत्ति और अपनी अन्त ये दोनों अनुभवके क्षेत्रमें आ नहीं सकते। इसलिए अनादि और अनन्त मानते हैं। जब हम अनादि अनन्त हैं तो ईश्वरके बारेमें तो कहना ही क्या है ? किसने सृष्टिकी आदि देखी, किसने अन्त देखा, किसने बनानेवालेको देखा ? आप अपने आपको देखेंगे तो सब देखा हुआ हो जायेगा। शस्ता है—उसकी आज्ञा चलती है। सूर्यपर, चन्द्रमापर, अग्निपर सबपर उसकी आज्ञा चलती है। एक तो वह सर्वज्ञ है, दूसरे सर्वशक्ति है, चाहे जो कर सकता है। सृष्टि बना सकता है, बिगाड़ सकता है, बदल सकता है और तीसरे परम दयालु है।

सर्वस्य धातारम्—सबको पुष्टि देता है। तीन बातपर आप ध्यान दें। सब जानता है, सब कर सकता है और उसका हृदय दयासे, करुणासे भरपूर है। शरण लेने योग्य वही है। जिसके हृदयमें दया न हो उसकी शरण क्या लेना। करना, चाहना हो

पर जानता ही न हो कि इसके दिलमें क्या है? मूर्खकी शरण नहीं ली जाती। असमर्थकी शरण नहीं ली जाती और क्रूरकी शरण नहीं ली जाती। परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वशक्ति है, परम दयालु हैं। इसलिए शरण लेने योग्य हैं। इसका ध्यान कैसे करें?

आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। आपके जीवनमें अन्धकार है। कहीं-न-कहीं अन्धकार है—जैसे आपकी आँख जब ऊपरको देखती है तो अन्धकार दिखायी देता है? नीलिमा है और जब हवाई जहाजमें बहुत ऊँचाईपर चलते हैं, तो नीचे भी नीलिमा दीखती है। यह जो क्षितिज है, वह केवल ऊपर ही नहीं है, केवल दायें-बायें नहीं है, यह नीचे भी है। माने हमारा जीवन अन्धकारके बीचमें जहाँतक हमारी आँख देख सकती है, चश्मा, खुर्दबीन, दूरबीनके सहारे, उतने प्रकाशमें ही हमारा जीवन चल रहा है। सृष्टिका आदि अन्त कौन देख रहा है? एक ऐसा प्रकाश है कि जिसके सामने कहीं अन्धकार नहीं होता। न आदिमें, न अन्तमें। न दाहिने, न बायें। न ऊपर, न नीचे। न भीतर, न बाहर—ऐसा प्रकाश है। एक ऐसा प्रकाश है, जिसके दाहिने, बायें, ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर, कहीं भी अन्धकार नहीं है। ऐसा प्रकाश है, ऐसा चेतन है, ऐसा ज्ञान है और वह सारे अन्धकारोंसे परे है।

जाग्रत् अवस्थामें बाहर अन्धकार है और आँख बन्द करो तो भीतर भी है। स्वप्नमें जाग्रत्की स्मृति नहीं होती। वह भी अन्धकारमें डूब जाती है और सुषुप्तिमें जाग्रत् और स्वप्न दोनो ही अन्धकारमें चले जाते हैं। कुछ नहीं मालूम पड़ता। आपने सुषुप्तिका—जहाँ वेदके मन्त्र नहीं होते। **तत्र वेदा अवेदा भवन्ति।** वहाँ माँ-बापकी याद नहीं रहती। वहाँ पति-पुत्र नहीं होते। आप एक ऐसी अवस्थामें रोज जाते हैं जहाँ सब छूट जाता है। भगवान्‌ने आपको कैसी असंगताका दर्शन करा दिया। सत्र

छोड़कर आप सो जाते हैं और आरामका अनुभव करते हैं कि सबको भूलकर सो जानेपर आराम मिलता है। हे भगवान्। गोदमें बच्चेको लेकर सोते हैं। उसके जागते हुए, खेलते हुए का आनन्द लेते रहते हैं। थोड़ी देरमें जब बच्चा और स्वयं सो जाते हैं, वह बच्चा भूल जाता है, तब नींद का आनन्द मिलता है। तकियेके नीचे हीरा, मोती रखनेका सुख होता है और जब उसको भूलकर सो जाते हैं तब आराम मिलता है। बगलमें पति-पत्नी, जब एक दूसरेको भूलकर सो जाते हैं तब आराम मिलता है। हमें रोज त्यागका सुख दिखाता है भगवान्। संसारकी विस्मृतिका सुख दिखाता है।

अब रह गया अज्ञान। तमसः परस्तात्। यह वेदका मन्त्र है। श्रीकृष्ण तो वेदके अनुसार ही बोलते हैं। **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।** सारे वेद भगवान्का वर्णन करते हैं। वेदके सामने भगवान् हार जाते हैं। वेदकी यह महिमा है। रासलीलाका प्रारम्भ है—श्रीकृष्ण कहते हैं गोपियोंसे कि लौट जाओ। धर्मरूपसे बोलते हैं। गोपियाँ कहती हैं—तुम धर्मकी बात कहते हो—हम ज्ञानकी बात करती हैं। तुम पूर्व मीमांसा हो, हम उत्तर मीमांसा हैं। तुम मनुस्मृति हो, धर्मशास्त्र हो, हम उपनिषद् हैं। गोपियोंने स्पष्ट कह दिया—तुम्हारी बात गलत, हमारी सही। तुम्हारे पास आकर कोई लौटता है? हे कहीं वेदमें यह बात कि परमात्माकी प्राप्ति हो जाय और फिर लौट जाय? **मामुपेत्य पुनर्जन्म।** श्रुति कहती है, सूत्र कहता है, गीता कहती है कि परमात्माके पास पहुँचनेके बाद फिर लौटना नहीं होता। श्रीकृष्णकी बात बड़ी कि गोपीकी बात बड़ी? गोपीने कहा—'तुम्हारी बात बड़ी नहीं—हमारी बात बड़ी।' और श्रीकृष्ण गोपियोंसे वाद-विवादमें, शास्त्रार्थमें हार गये। यह है वेदकी महिमा। जब अर्जुनसे भी बातचीत करते हैं तब बीच-बीचमें वेदके मन्त्र बोलते हैं। बहुत-से हैं।

यश्चैनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

यह भी वेदका मन्त्र है।

वेद बड़ा है। क्योंकि युक्तियाँ केवल लोकको देखती हैं—लौकिक कल्याण। धर्मशास्त्र लोक, परलोक दोनोंको देखते हैं। उपनिषदें परमार्थ-सत्यको देखती हैं। वे न केवल लोकमें फँसती हैं, न केवल परलोकमें फँसती हैं, न दोनोंमें फँसती हैं। वे केवल परमार्थको देखती हैं। गोपीको न लोककी चिन्ता है, न परलोककी चिन्ता है, न दोनोंकी चिन्ता है, वे तो परमार्थस्वरूप श्रीकृष्णसे प्रेम करती हैं। यह उपनिषद् है। इसका नाम श्रुति है। गोपी माने श्रुति—गोपी माने वेदकी ऋचा। मालूम पड़ता है कि एक मन्त्रका पति इन्द्र है। एक ऋचाका पति अग्नि है। एक ऋचाका पति वायु है, उसका प्रतिपादन करती है। परन्तु वे अन्तरंगसे सब न अग्निका, न वायुका, न सूर्यका प्रतिपादन करती हैं बल्कि वे अन्तरंगसे सब ब्रह्मका प्रतिपादन करती हैं। परमात्माका करती हैं। इसलिए बाहरसे देखनेमें उनके देवता अलग-अलग हैं और भीतरसे सबके देवता एक हैं। यह रास है। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। यह श्रुतिका वचन है। श्रीकृष्ण इसको प्रामाणिक मानते हैं।

शिवपुराणमें एक कथा है—पितामह भीष्म पिण्डदान कर रहे थे अपने पिताके लिए। हाथ निकला। कथाका अर्थ समझिये। भीष्मके पिताका, शान्तनुका हाथ निकला, नदीमें-से—पिण्ड लेनेके लिए। ब्राह्मणने कहा कि हाथपर पिण्ड दे दीजिये आप! भीष्मने कहा—नहीं महाराज, आप बताइये शास्त्रमें पिण्डदान-की विधि क्या है? हाथपर देनेकी है या वेदीपर? ब्राह्मणने कहा, शास्त्रमें तो विधान है कुशा जिसपर बिछ रही हो, ऐसी

वेदीपर पिण्डदान करनेका, जो उक्त पितरके लिए निर्धारित हो। बोले—तब भले हाथ निकला रहे, हम तो वेदीपर पिण्डदान करेंगे। क्यों? बोले—हमारे सामने तो पिताजीका हाथ निकला। दुनियामें ऐसे लोग पिण्डदान करेंगे, जिनके सामने हाथ नहीं निकलेगा तो कहेंगे हाथ नहीं निकलेगा तो हम पिण्डदान ही नहीं करेंगे। परम्परा ही बिगड़ जायेगी। अतः हम तो शास्त्रीय रीतिको ही करेंगे। अनुशासनका भंग नहीं होना चाहिए। अनुशासन जीवनकी एक खास वस्तु है। यह श्रुतिका अनुशासन है।

सबसे घना अन्धकार हमारे जीवनमें तब होता है, जब हम सो जाते हैं, गाढ़ निद्रामें। उससे घना अन्धकार जीवनमें और कहीं नहीं है। नरकमें भी नहीं है। सातवें आसमानमें भी नहीं है। पातालमें भी नहीं है। सुषुप्तिमें भी जो चमकता रहता है। आपने सुषुप्तिका अन्धकार देखा है—वहाँ आपकी जाग्रत्‌की वस्तुएँ नहीं है, न आपका स्वप्न है। कुछ मालूम नहीं पड़ता। जब कुछ मालूम नहीं पड़ता है तो कुछ देखते भी नहीं हैं। **तमसः परस्तात्**—परमात्मा वहाँ है। अर्थात् वह सुषुप्तिमें भी है। स्वप्नमें भी है, जाग्रत्‌में भी है। इसका यही मतलब हुआ। क्योंकि जो गाढ़ अन्धकारमें आपका साथ नहीं छोड़ता वह सपनेमें, जहाँ आपका मन टिमटिमाता है, वहाँ आपका साथ क्यों छोड़ देगा? जाग्रत्‌की याद स्वप्नमें नहीं—जाग्रत्, स्वप्नकी याद सुषुप्तिमें नहीं। परन्तु स्वप्नमें सुषुप्तिकी याद है और जाग्रत्‌में स्वप्न, सुषुप्ति दोनोंकी याद है। यह अन्धकारमें पड़े हुए गाढ़ सुषुप्तिमें भी आपके साथ, आपकी आत्माके रूपमें **धियो यो नः प्रचोदयात्, तस्य यस्य भासा सर्वमिदं विभाति**—उसके प्रकाशसे सुषुप्ति मालूम पड़ती है, वह परमात्मा है। इतना निकट है और इतना अपना है कि जाग्रत्‌में भी आपके पदार्थ और सम्बन्धी छूट जाते हैं। स्वप्नमें तो छूट ही जाते हैं। परन्तु

सुषुप्तिमें भी जहाँ सब छूट जाता है वहाँ भी परमेश्वर नहीं छूटता है। वह इतना अन्तरङ्ग है। इसीसे परमेश्वर युक्तिसे नहीं जाना जाता। जो युक्ति होती है, तर्क होते हैं, हेतु होते हैं वे तो लोकको देखकर होते हैं। दुनियादारीमें-से तर्क निकलते हैं। वहाँ तर्ककी पहुँच नहीं होती है।

जिसका अनुभवमें अन्त है वह—आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। आओ, इस अन्धेरेको पार करो। अन्धकारको पार करो—देखो परमात्माको। जब आप सुषुप्तिमें जो प्रकाश है उसको पहचान जाओगे तो उसे प्राप्त कर लोगे। क्योंकि सुषुप्तिमें देश-काल भी नहीं होता। लम्बाई-चौड़ाई भी नहीं होती और उमर भी नहीं होती, वजन भी नहीं होता, वजन नहीं होता इसलिए द्रव्य नहीं है। और लम्बाई-चौड़ाई नहीं होती इसलिए देश नहीं है और उमर नहीं होती इसलिए काल नहीं है। सुषुप्तिमें जो प्रकाश है, उसमें न द्रव्य है, न देश है, न काल है—न अन्धकार है। ऐसी वह रोशनी है। आप एक बार उसको देखो, अनुभव करो और फिर मृत्यु भी आपको उस परमात्मासे अलग नहीं कर सकती। कहते हैं कि दुनियामें जितनी भी चीजें हैं, उनमें मृत्यु सबसे ठोस है। पर मृत्युसे भी ठोस है परमात्मा। आत्मा—यह आपको कभी छोड़ नहीं सकती। यदि आप उसे जान लो या उसका भाव कर लो या उसके अनुचिन्तनका अभ्यास कर लो।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

आप जीवनमें एक बार परम पुरुषकी प्राप्ति जरूर करो। फिर, मौत भी परमेश्वरसे अलग नहीं कर सकती। सुषुप्ति भी परमेश्वरसे अलग नहीं कर सकती। मृत्युके रूपमें परमात्मा ही है।

देख मौत का रूप धरे मैं नहीं डरूँगा तुससे नाथ।
भले बने हो लम्बकनाथ॥

परमात्मा भूत बनकर आये। भूतमें परमात्माका दर्शन, मृत्युमें परमात्माका दर्शन, दुःखमें परमात्माका दर्शन, शोकमें परमात्माका दर्शन, मोहमें परमात्माका दर्शन, वह कभी आपकी आँखसे ओझल होगा ही नहीं।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

अन्तमें अर्जुनका प्रश्न था—

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः। ८.२

भगवान् कहते हैं देखो—अचल मन हो, हृदयमें भक्ति हो, योगका बल हो तो आप अपने प्राणको ऊर्ध्वगतिमें ले जा सकते हैं। उसके लिए प्राणायामकी आवश्यकता नहीं पड़ती। मन और प्राण तो एक ही हैं। यदि आपका मन परमेश्वरकी ओर चले तो आपके प्राण तो अपने आप ही परमेश्वरकी ओर चलेंगे। मन भावात्मक है और प्राण क्रियात्मक हैं। और वीर्य प्रत्यात्मक हैं। ये तीनों एक ही चीज हैं—वीर्य, प्राण और मन। अत्यन्त सूक्ष्म मन है, उससे स्थूल प्राण हैं और प्राणसे स्थूल वीर्य है।

यह सुननेमें आता है कि काशीमें मरनेसे मुक्ति मिलती है, तो वह काशी बाहरकी है। यह बात भाव, भक्तिकी दृष्टिसे बिलकुल ठीक है। एक स्थान तो ऐसा होना ही चाहिए। एकादशी एक काल है वैसे ही काशी एक स्थान है। तुलसी, चरणामृत ये द्रव्य हैं। इनमें परमेश्वरका आवाहन नहीं करना पड़ता। काशीमें आवाहनके बिना ही परमेश्वर रहता है। एकादशीमें आवाहनके बिना ही परमेश्वर रहता है और तुलसीमें, गंगाजलमें, चरणा-

मृतमें आवाहनके बिना ही परमेश्वर रहता है। जैसे उनकी महिमा है, वैसे अपने शरीरमें **वाराणसी भ्रुवोर्मध्ये**—दोनों भौंहोंके बीचमें काशी है। चौरासी कोसकी काशी है। पच्चीस कोसकी वाराणसी है और तीन कोसकी अन्तर्वेदी है। उसके परे अविमुक्त क्षेत्र है। जहाँ बिना मुक्तिके कोई रहता ही नहीं। यह आध्यात्मिक काशी होती है भौंहोंके बीचमें। अपने प्राणोंको वहाँ ले जाते हैं और फिर काशीमें मुक्ति होती है। परमपुरुष परमात्माकी प्राप्ति होती है। यह है अभ्यासकी बात, भावकी बात।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥८.११

भगवान् यह भी वेदमन्त्र ही उद्धृत कर देते हैं। वेदवेत्ता उसे बोलते हैं और संन्यासी लोग रागद्वेष छोड़कर 'वीतरागः' वीतराग होकर जिसमें प्रवेश करते हैं, और—**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**। वेदविद् गृहस्थ हैं, और 'यतयो वीतरागाः' 'संन्यासी' हैं और **यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति**—यह ब्रह्मचारी गृहस्थके लिए वेदके पाठकी विधि है, अग्निहोत्र यज्ञयागकी विधि है। गृहस्थ पति-पत्नी दोनों साथ बैठकर यज्ञादि करते हैं। पत्नीके मर जानेके बाद अग्निहोत्र नहीं होता। उस समय अन्तःकरण शुद्धिके लिए जप करते हैं। **जपेनैव तु संसिद्धिः**—विधुर पुरुषको जप करना चाहिए। गृहस्थ और वानप्रस्थ वेद मन्त्रका पाठ करते हैं, अग्निहोत्र करते हैं—पत्नीके साथ। ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और संन्यासी लोग रागद्वेषसे विनिर्मुक्त होकर परमात्मामें प्रवेश करते हैं। वह पद क्या है? बहुत संक्षेपमें आपको सुनाते हैं। संग्रहेण-माने विस्तारसे।

भागवतमें एक ऐसा प्रसंग है—बलरामजीको श्रीकृष्णसे कुछ पूछना था। एक ऐसा प्रसंग आया कि ये हमारे बछड़े, बछड़े नहीं हैं—ऋषि हैं। ग्वाले, ग्वाले नहीं हैं—देवता हैं। अब बलरामजी-ने अपनी दिव्यदृष्टिसे देखा—सचमुच नहीं हैं। अरे! ये हमारे ग्वाल-बाल क्या हो गये? हमारे गायोंके बछड़े क्या हो गये? ये तो सब ऋषि हैं। ये तो सब देवता हैं। यह हुआ क्या? उनको ठीक-ठीक पता नहीं चला। वे ब्रह्माकी मायाको तोड़ सकते थे—प्राकृति मायाको तोड़ सकते हैं। शिवकी मायाको तोड़ सकते हैं परन्तु श्रीकृष्णकी मायाका भेदन बलराम नहीं कर सकते। उन्होंने पूछा—कन्हैया भैया! यह क्या हुआ? हमारे ग्वाले कहाँ गये? हमारे बछड़े कहाँ गये? पर पूछनेके बाद उन्होंने कहा—बस, जरा-सा बोल दो—थोड़ेमें बता दो। संक्षेपमें बोलो। क्यों? बलरामजी, श्रीकृष्णको अधिक बोलना पड़े, यह कष्ट भी नहीं देना चाहते। इशारा कर दो कि ये कौन हैं? 'निगमेन'—शब्दका प्रयोग है। मैं समझ जाऊँ—इतना इशारा कर दो। व्याख्यान देनेकी जरूरत नहीं। कोई और सुन लेगा। तुमको बोलनेकी तकलीफ न उठानी पड़े और दूसरेको पता न चले और इशारेमें मैं समझ जाउँ—ये देवता कहाँसे आगये! ऋषि कहाँसे आगये! भागवतमें यह प्रसंग है।

यहाँ बोलते हैं—संग्रहेण प्रवक्ष्ये। बहुत सारी बातोंका सार-सार संग्रह करके—प्रवक्ष्ये प्रवचन करूँगा। संक्षेपमें मृत्युकी विधि बताते हैं। हमारे जन्मके समय भी विधि होती है। एक बार मैं काशीमें पण्डितराज राजेश्वर शास्त्रीके घर गया। उनका तीसरा व्याह हुआ था। बड़ा मंगल-गान हो रहा था। मैंने पूछा आज क्या है? बोले गर्भाधान-संस्कार है। पति-पत्नीके सहवाससे आज पेटमें बच्चा आयेगा। उसके बाद पुंसवन-संस्कार आयेगा। बेटा होगा। सीमन्तोन्नयन-संस्कार होगा। पत्नी निश्चिन्त रहेगी। फिर

जातकर्म—पैदा होनेके समय आये गा। मरनेके बाद भी अन्त्येष्टि कर्म होता है। ये सब संस्कार हैं। माने लोकके हृदयमें धर्मका संस्कार डाला जाता है। धर्म अपने आप नहीं आता। अधर्म अपने आप आता है। अज्ञान अपने आप आता है। स्वच्छन्द आचरण अपने आप आता है। उसको नियमित करनेके लिए—स्वभावको सुनिश्चित बनानेके लिए, संस्कारकी आवश्यकता होती है। मृत्युका भी संस्कार करो। अन्त्येष्टि कर्म होता है।

पहले मरनेकी भी धार्मिक विधि होती थी। आजकल कोई माने चाहे न माने। धर्मकी रीतिसे मरना। स्वामी विशुद्धानन्द जी काशीमें रहते थे। दशाश्वमेध घाटके पास अभी उनका विशुद्धानन्द मठ है और स्वामी दयानन्दके समयमें थे। जब उन्हें शरीर का त्याग करना था, तो बैठ गये सबके सामने। अपनी गुफा बन्द नहीं की, कहा—तीन दिनतक हमको कोई बुलावे नहीं। कुशासन बिछाकर बैठे थे। न कुछ खाया, न पीया, न शौच न लघुशंका। आँख खुली और शरीर त्याग दिया। जो लोग ऐसा नहीं कर सकते, उनके लिए पहले अक्षयवटपर जाकर प्रयागराजमें जमुनाजीके तटपर अक्षयवटके निकट संस्कार करना पड़ता था। उसकी पूजा होती, पाठ होता, संकल्प होता। दो-तीन दिन उपवास करना पड़ता तब उसके बाद—मरनेको धर्म बना दिया हमारे शास्त्रोंने—हमारे ऋषियोंने। मृत्युको धर्म बना दिया।

युद्ध भूमिमें मरना भी धर्म है। धर्मके अनुसार शरीरका त्याग करना भी धर्म है। तब मोक्षको भी सब जगह ले आओ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥११॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१२॥

इस प्रसंगमें एक बात याद आ गयी। ऐसा बोलते हैं—हमको याद नहीं है—देखा भी नहीं था मैंने। मैं ७ वर्षका था तब मेरे पिताकी मृत्यु हुई थी। उनको जीवित ही उठाकर गंगाजीके तटपर ले गये थे, पालकीमें। सैकड़ों शिष्य उनके साथ गये थे। मरते समय किसीके मल निकल आता है। किसीके मूत्र निकल आता है। किसीका मुँह खुल जाता है। किसीकी आँख उलट जाती है। हमारे पिताजी जब मरने लगे तो उनका सिर फट गया और उसमें-से एक मांस-पिण्ड निकलकर गंगाजीमें गिर पड़ा। सैकड़ों लोगोंने देखा था। आप यदि अपने नीचेके द्वारोंको स्वच्छन्द कर देते हैं—कोई रोक-टोक नहीं तब वे इतने ढीले पड़ जायेंगे कि आपके प्राण वहाँसे निकलनेका प्रयास करेंगे। यदि आपको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है तो प्राण कहींसे भी निकलें, कोई परवाह नहीं। यदि आपको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है तो प्राण निकलकर कहीं जाते ही नहीं वह तो यहीं हवामें मिल जाते हैं।

अज्ञानरहित वासनाशून्य प्राणीका जब शरीर छूटता है जब वासना ही नहीं है तो सूक्ष्म शरीरको—प्राणको निकाल करके कोई कहाँ ले जाये?

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्—आपके जीवनमें, शरीरमें, इस नगरमें नौ दरवाजे हैं। कोई खुला मिलेगा, तो उसमें-से सूक्ष्म शरीर निकलकर संसारमें जायेगा। सर्वद्वाराणि संयम्य—इसका नाम है साधन—अभ्यास, संयम। आपके जीवनमें संयम होना चाहिए। आप समझते हैं कि वहाँ नहीं जाना चाहिए और पाँव उठकर चले गये। आप समझते हैं कि यह काम नहीं करना चाहिए और आपने वही काम कर दिया। आप समझते

हैं कि 'यह नहीं बोलना चाहिए,' और वही बात बोल दी। आप समझते हैं—कि यह नहीं लेना चाहिए और वही चीज ले ली। यह आपकी जीभ, आपका हाथ, आपका पाँव संवृत नहीं है। आप उसको ढककर नहीं रखते हैं। संयममें नहीं रखते हैं। एक स्थानमें आप अपने मनको बाँधिये और बार-बार उसको टच कीजिये, आप उसमें तन्मय हो जायेंगे। इसीका नाम समाधि हुआ। आपका मन एक घेरेमें रहे, बाहर न जायँ। अपने मनको आपने एक देशमें बाँध लिया—यह धारणा हो गयी और क्रमसे एकके बाद दो, दोके बाद तीन, तीनके बाद चार—कालमें हर सेकेण्डमें आपका मन एक वस्तुको छूये और उसी वस्तुमें तन्मय हो जाये—इसको बोलते हैं संयम।

सर्वद्वाराणि संयम्य।

मनो हृदिनिरुध्य च—जैसे घोड़ेकी बागडोर आप अपने हाथमें रखते हैं—किसी बादशाहको हाथीपर बैठाया गया तो उसने कहा कि इसकी लगाम हमारे हाथमें दे दो। तो बताया गया कि हाथी के लगाम नहीं होती। तुरन्त कूद पड़ा वह बादशाह। जिस जानवरके लगाम नहीं है, उसके ऊपर मैं कैसे चढ़ूँगा। आपका यह जो घोड़ा है, वह संयमित होना चाहिए। यहाँ कलकत्तामें एक जयदयाल कसेरा थे, वे शरीरको घोड़िया बोलते थे—घोड़िया खोलिया भी बोलते थे। यह जो घोड़िया है जिसपर आप चढ़े हुए हैं—इसकी बागडोर, इसकी लगाम आपके हाथमें है कि नहीं? चाहे जब जिस द्वारको खोलें और चाहे जब जिस द्वारको बन्द कर दें। आपके नियन्त्रणमें यह घोड़ा होना चाहिए। दाहिने मोड़ो, बायें मोड़ो। सामने ले चलो, पीछे हटा लो। **इन्द्रियाणि हयानाबाहुः** इन्द्रियोंको घोड़ा बोलते हैं, जिसपर आप चढ़ें।

इन्द्रियोंको खुला छोड़ दिया, जो मौजमें आयी बोल दिया।

यह पागलपन ही तो है। असलमें किसीको किसी बातका अभिमान होता है। हम पण्डितोंमें देखते हैं। व्याकरणका अच्छा पण्डित माननेवाला जो चाहे सो बोल देगा और कहो कि तुमने गलत बोला तो वह तुरन्त व्याकरणके सूत्र लगाकर सिद्ध कर देगा कि मैं ठीक बोला था। अभिमानी पुरुष अपनी इन्द्रियोंपर लगाम नहीं लगा पाते। एक विषयका तो अभिमान कर लेते हैं और बाकी विषयमें गिर जाते हैं। अतः सभी विषयोंपर नियन्त्रण चाहिए—**सर्वद्वाराणि संयम्य**। यह जो मनीराम हैं, इनको हृदयमें रख लो। आप चित्त शब्द पढ़ते हैं। इसका अर्थ है चुननेवाला। यह चुन लेता है—यह दुश्मन है, इसे अलग रखो। यह चुन लेता है 'यह दोस्त है'—इसको अलग रखो। **चिनोति-चिनुते इति चित्**। जो संस्कारका चयन करता है। आप बोलते हैं तो वही बोलते हैं जो आपने चुनकर हृदयमें दोस्त या दुश्मन रखा है।

मैं बच्चा था हमारे चाचाका घर पासमें था, चुपके-से जाता उनके घरमें खा लेता—अच्छा लगता भोजन। खाकर जब आता अपने घर तो मेरी माँ कहती कि भोजन कर लो। मैं बहाना बनाता कि अभी नहीं खाऊँगा या मैं यह खाऊँगा—यह नहीं खाऊँगा, यह नहीं खाऊँगा। एक दिन मुझे कै हो गयी, तो वहाँसे जो खाकर आया था माँने कहा यह कहाँसे आया ? अभी तो कह रहा था नहीं खायेंगे, नहीं खायेंगे।

यह जो हम लोग उगलते हैं—हाथसे उगलते हैं, जीभसे उगलते हैं—बोलते हैं—पाँवसे उगलते हैं अपने संकेतोंसे उगलते हैं—वही उगलते हैं जो चुन-चुनकर भीतर रखा हुआ है। कोई अपनेको छिपा नहीं सकता। क्रोध आता है तो आँखमें लाली आती ही है। काम आता है तो शरीरमें उत्तेजना होती ही है। चटोरापन आता है तो जीभपर पानी आता ही है। आप उसको

रोक नहीं सकते। मनको हृदयमें रोक लो और अपने प्राणको भावसे, युक्तिसे, योगसे ऊर्ध्वगतिमें ले जाओ, योगधारणामें स्थित हो जाओ।

ॐ यह निवृत्तिका मन्त्र है। इसीसे धर्मशास्त्रमें तो ऐसा वर्णन आता है कि अकेले प्रणवका जप उन्हीं लोगोंको करना चाहिए जो संसार छोड़कर समाधिमें जाना चाहते हैं या अपनी समाधिमें स्थित होना चाहते हैं। केवल निवृत्ति प्रधान लोगोंको ही प्रणवका जप करना चाहिए। यह एकाक्षर ब्रह्म है। इसमें विस्तार नहीं है, संक्षेप है। प्रवृत्ति नहीं है, निवृत्ति है। इसमें बहिर्मुखता नहीं है। अन्तर्मुखता है।

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्। उच्चारण करो अकार उकार मकार और अर्धमात्राके क्रमसे। इसमें निवृत्ति कला है। इसमें विद्या कला है। इसमें जाग्रत् है, स्वप्न है, सुषुप्ति है। अर्धमात्रा है। इसमें तुरीय है, इसमें विद्या है, इसमें निवृत्ति है—व्याहरन् मामनुस्मरन्। प्रणवका करो उच्चारण और मेरा करो स्मरण। उच्चारण अर्थशून्य नहीं होना चाहिए। अर्थशून्य उच्चारणमें लय हो जाता है। जब हम भजन करने बैठते हैं तो उसमें दो बातें है—वृत्तिलीन हो जाती है। मालूम पड़ता है, हमें समाधि लग गयी थी। पर नहीं, वह तो सुषुप्ति होती है। वृत्ति कहीं चली जाती है। विक्षेप हो जाता है। कोई रागद्वेष जाग जाता है। कोई वहीं मजा आने लगता है। नहीं, इनसे अलग-वृत्ति लय भी न हो, विक्षेप भी न हो—रागद्वेष भी न आये और रसास्वाद न भी हो—अपनी वृत्तिको परमेश्वरमें जाने दो। यह परमेश्वरकी ओर चित्तवृत्ति जानेमें विघ्न आते हैं। माला हाथसे छूटकर गिर गयी। मन सो गया। मन कहीं चला गया। पता ही नहीं लगा ऐसा मजा आगया कि परमेश्वर भूल गया। स्वयं भोक्ता बन गये।

व्रजमें यह बात प्रसिद्ध है कि एक सज्जन कहते थे कि हमें राधारानीका दर्शन होना चाहिए। प्रेमकी वे मूर्ति हैं, रसकी मूर्ति हैं। उस सौन्दर्यका नाम राधा है जो श्रीकृष्णको आकृष्ट कर लेता है। भगवान्‌को—परब्रह्म परमात्माको भी आकृष्ट कर लेता है। जिसके प्रेमको देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। जिनकी सत्ताके सामने श्रीकृष्णको भी अपने सत्ताका भान नहीं होता है।

एक महात्माने यह निश्चय किया कि मैं तो राधारानीका दर्शन करूँगा। बड़ी भारी तपस्या की, आराधना की, प्रेम किया। आकाशवाणी हुई—देखो तुम दर्शनका आग्रह मत करो, भजन करो, प्रेम करो—दर्शनका आग्रह मत करो। एक दो तीन बार आकाशवाणी हुई—दर्शनका आग्रह मत करो—प्रेम करो, भजन करो। नहीं माना वह। नहीं माना तो एक हाथ उसके सामने आया—स्वर्णवर्ण—दिव्य—उसको देखते ही भक्तके मनमें काम वृत्ति जाग्रत हो गयी। हाथको देखते ही काम वृत्तिका जागरण हो गया। सावधान! हाथका लोप हो गया।

जब हम भजनमें अपने सुखस्वादपर दृष्टि रखने लगते हैं, हम भोक्ता बन जाते हैं, जहाँ भोक्ता और भोग्य दोनों भूल जाना चाहिए, वहाँ हम भोक्ता बनकर आजाते हैं। वह राधारानी भी कई तरहकी होती हैं—सात तरहकी राधाओंका वर्णन शास्त्रमें आता है। ज्ञातराधा! आपको सुनाते हैं, आस्थितो योगधारणाम्, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। परमात्माकी अनुस्मृति हो। माने शब्दका जो अर्थ है, उसका ज्ञान हो। केवल शब्दमें जो अक्षर है—जनरञ्जन—उन अक्षरोंकी याद नहीं, उसमें जो ताल है, स्वर है, रागिनी है वह नहीं—उसमें जो अपना मजा है सो नहीं, जो अपनी लीनता है सो नहीं—मामनुस्मरन्—

परमात्माका स्मरण करो और उस स्मरणमें, जाग्रत्में—छूट गया शरीर।

सुमन माल जिमि कण्ठते गिरत जान न जान।

हाथीके गलेसे फूलकी माला गिर गयी। शरीर गिर गया और विलकुल जाग्रत् अवस्थामें बैठे हैं। इस तरह जो शरीरका त्याग करता हुआ जाता है, उसको परमगतिकी प्राप्ति होती है। परन्तु यह परमगति कैसे प्राप्त हो? इसके लिए जीवन भर, यह नहीं कि उसी दिन—जब मरने लगेंगे तब बैठ जायँगे, जब मरने लगेंगे तब छोड़ देंगे। इसके लिए अभ्यास चाहिए। यह नहीं कि माँने बेटीसे कहा कि बेटी रोटी बना लो तो बोली माँ अभीसे कौन बनावे जब बनानी होगी बना लेंगे। तो उस दिन तो बाबा रोटी टेढ़ी हो जावेगी, आटा ही ठीक नहीं गुथेगा। उसके लिए भी अभ्यास चाहिए। यह नहीं कि जब इन्जेक्शन लगाना होगा तब लगा लेंगे। पहले तकियेमें लगाकर सीखते हैं। अभ्यास तो चाहिए न उसके लिए। यह नहीं वकील बनेंगे और जाकर जजके सामने बोलना शुरू कर देंगे। लड़खड़ा जायेंगे। पाँव काँपने लगेंगे। बोलती बन्द हो जायेगी। उसके लिए अभ्यास चाहिए। जीवनमें अभ्यास चाहिए।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

मृत्युके समय भी भगवान् सुलभ हो जाते हैं। परन्तु कब सुलभ होते हैं, जब हम जीवनकालमें उनका स्मरण करते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●

अम्ब = माँ। गीता माँ है। 'अम्बा' शब्दका अर्थ होता है वर्णात्मक अ, आ, इ, ई —क, ख, ग अक्षरों-वर्णों, शब्दोंसे ही जिसकी मूर्ति बनी हो उसको बोलते हैं अम्बा। इसीका सम्बोधन होता है—'अम्ब!' गीता क्या है? वर्णात्मक है। इसका अनुसन्धान क्या है? एक-एक अक्षरका अनुसन्धान, गौरसे—गम्भीरतासे।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

भगवान् कहते हैं—'मैं उस योगीके लिए सुलभ हूँ। किस योगीके लिए? जो अनन्यचेता नित्य, सतत मेरा स्मरण करता है। वह कोई भी हो स्त्री हो, पुरुष हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो। स्वदेशी हो, परदेशी हो। इसमें कोई भेद नहीं है। हमारे भगवान् शंकराचार्य और उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य दोनों इस बातका निर्णय देते हैं कि शरीरसे काम करना हो तब शारीरिक अधिकारपर विचार करना चाहिए और जब मनसे काम करना हो—जैसे भगावान्का स्मरण। उसमें शारीरिक अधिकारपर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए और यदि वेदान्तका विचार करना हो तब तो शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, अन्तःकरणकी शुद्धि ही वहाँ अधिकार है। शारीरिक अधिकार—अधिकार नहीं होता। वहाँ जन्मभूमिका, जातिका, वर्णका, आश्रमका कोई विचार नहीं, जिसमें शान्ति आदि सद्गुण हैं—वह इसका अधिकारी है।

अनन्यचित्तका अर्थ क्या? चित्त है परन्तु उसमें अन्य नहीं। चेतस् माने ज्ञान तो है परन्तु इसमें परमेश्वरके सिवाय दूसरा कोई ज्ञेय नहीं है। ज्ञान है और परमात्मारूप ज्ञेय है। इस-संसारमें ज्ञान और ज्ञेय दोनों अलग-अलग होते हैं। जब जड़

अलग होता है तब वह ज्ञानका ज्ञेय होकर अलग हो जाता है। ज्ञेयसे अलग होता है ज्ञान। जब परमात्मा अलग नहीं होता, ज्ञान और ज्ञेयका भेद नहीं होता। यह एक दर्शन-शास्त्रका रहस्य है। इसीसे गीतामें—

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्। १३.१७

जो ज्ञान है वही ज्ञेय है। जो ज्ञेय है वही ज्ञान है। जैसे यह माला हमारे ज्ञानका विषय हो रही है और इस मालासे हमारा ज्ञान अलग है। वैसे जब हमें परमात्माका ज्ञान होता है तो परमात्मा और परमात्माका ज्ञान ये दोनों अलग-अलग नहीं होते। ज्ञेयाभिन्न ज्ञान होता है। ज्ञानाभिन्न ज्ञेय होता है। यह है अनन्यकी बात। यह है अलौकिक बात।

कोई कोई भगवान्‌का स्मरण करते हैं। करते हैं भगवान्‌का स्मरण और उनसे चाहते हैं अन्य-अन्य वस्तुएँ। जैसे कोई धनके लिए, कोई पुत्रके लिए, कोई मुकदमेमें जीतके लिए, कोई स्वास्थ्य-के लिए, कोई यशके लिए, कोई संकट दूर करनेके लिए। उद्देश्य अलग होता है और स्मरणकी वृत्ति अलग होती है और भगवान्-का आश्रय लेते हैं। यह तीनों चीज, तीन जगह हो जाती है। जो दूसरी वस्तुकी प्राप्तिके लिए भगावन्‌का स्मरण करते हैं उनको बहुत छोटा, निम्नकोटिका अधिकारी माना जाता है। हैं तो वे भी अधिकारी ही। क्योंकि पुलिससे माँगना, सेठसे माँगना, राजासे माँगना, पड़ोसीसे माँगना भी तो होता है। वे दूसरोंसे न माँगकर भगवान्‌से माँगते हैं। इसलिए दूसरोंसे माँगनेवाले भिखारियोंसे तो वे बहुत श्रेष्ठ हैं। परन्तु उसमें एक व्रत होना चाहिए कि भगवान्‌के सिवाय दूसरे किसीसे माँगेंगे नहीं।

वृन्दावनमें एक सज्जन आये। यमुनाजीमें खड़े हो गये। बोले हमको तो भगवान् अपने हाथसे खिलावेंगे तब खायेंगे। नहीं तो

भूखे रहेंगे। एक दिन, दो दिन तीन दिन बीत गये। उन्होंने देखा जमुनामें जलेबी बह रही है। उन्होंने सोचा भगवान् अपने हाथसे थोड़े ही खिलावेंगे। यह हमारे लिए ही तो जलेबी बहा रहे हैं। उठाकर खा गये। खा लिया तो उनका जो संकल्प था कि भगवान् अपने हाथसे खिलायें, वह छूट गया। अनन्यका अर्थ होता है कि यदि आप कोई दूसरी वस्तु भी चाहते हैं तो फिर उसमें यह व्रत दृढ़तासे निभावें कि भगवान्के सिवाय दूसरेसे नहीं माँगेंगे।

जिन जाचक जाचकता जरि जाई।

भगवान्से जब माँगोगे तो दूसरेसे माँगना तो पहले ही छूट गया और भगवान्पर दृष्टि जायेगी तो माँगनेकी वृत्ति अपने आप शिथिल हो जायेगी। वह तो परिपूर्ण है। अब दूसरी बात होती है कि हम करते हैं अपनी ओरसे भगवान्का स्मरण और उसके बलपर चढ़ते हैं भगवान्पर। यह मध्यम अधिकारी हुआ। हम इतना जप करेंगे, इतना व्रत करेंगे। इतनी पूजा करेंगे, इतना ध्यान करेंगे। इतना दान करेंगे और इसके बलपर हमको भगवान् मिल जायेंगे। यह अपने बलपर, अपने साधनके बलपर भगवान्को प्राप्त करनेकी जो वृत्ति है, इसमें भगवान्पर दृष्टि होनेमें थोड़ी-सी बाधा है। क्योंकि अपने ऊपर दृष्टि है। जबतक अपने ऊपर दृष्टि रहती है, तबतक भगवान् सुलभ नहीं होते। बल्कि सुलभ भी दुर्लभ हो जाते हैं।

आपके ध्यानमें यह बात होगी। रासलीला हो रही थी। भगवान् गोपियोंके साथ नृत्य कर रहे थे। एक भगवान् और सहस्र-सहस्र गोपियाँ। जैसे एक कूटस्थ चैतन्य केन्द्र हो और परिधि बनाकर कोटि-कोटि वृत्तियाँ उसीकी ओर देख रही हों, चमक रही हों, नाच रही हों। नृत्य कर रही गोपियोंके मनमें एक बाधाका उदय हुआ। विघ्न आया। वे सोचने लगीं कि हम

इतनी सुन्दर हैं, इतनी मधुर हैं, इतनी प्रेमवती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे ऊपर मुग्ध हैं। जब अपनी विशेषतापर उनका ध्यान गया तो श्रीकृष्णका दर्शन बन्द हो गया। यह रासलीलामें आपने पढ़ा होगा, सुना होगा—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

—श्रीमद्भा० १०.२९.४८

जब हम अपने बलपर भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं तो वहाँ अपना आपा दीखने लगता है। कृष्णने कहा—अच्छा, गोपियो! अब तुम शीशेमें अपना सौन्दर्य निहारो। अपने माधुर्य-का स्वयं आस्वादन करो। मैं तो अन्तर्धान होता हूँ। दूसरेको देखना तो निम्न कोटि है और अपनेको देखना मध्यम कोटि है। अब एक तीसरी बात यह है कि हम भगवान्‌से भगवान्‌को ही चाहें। भगवान्‌से ही भगवान्‌को चाहें। 'हमारा बल तो कुछ नहीं है—हम तो हार गये, थक गये'—अनन्यता हुई। एक तो हम भगवान्‌से संसारका विषय नहीं माँगते। दूसरे अपने बलकी ओर, अपने साधनकी ओर नहीं देखते। संस्कृत भाषामें एक 'प्रपन्न-पारिजात' नामका ग्रन्थ है। जब मैं कहता हूँ कि महात्माके चरणोंमें मैंने बैठकर सीखा है तो हमारे साथी (देवधरजी) कहते हैं कि जो इन ग्रन्थोंका आप नाम लेते हैं, क्या ये भी महात्माओं-के चरणोंमें बैठकर ही आपने पढ़े हैं? ग्रन्थका नाम है—'प्रपन्न पारिजात'। उसमें ये तीन विभाग स्पष्ट किये हैं। महाविश्वास अपने चित्तमें होना चाहिए और उपाय भी भगवान्, उपेय भी भगवान्। भगवान् मिलते हैं और भगवान्‌के मिलनेका उपाय भी भगवान् ही हैं।

आज खूब गरमी पड़ रही है। गरमी सूर्यमें-से आ रही है एक

बात। सूर्यको परमेश्वरने बनाया है, यह बात बिलकुल पक्की है। पञ्चभूतोंका रस निकला और उससे सूर्य बना, ऐसा वेदमें लिखा है।

आजान देवता है। जन्मसे ही देवता है सूर्य और पंचभूतोंके रससे भगवान्‌ने बनाया है। सहज स्वभावसे यह प्रकाशकी वर्षा करता है। जीवनदान करता है। इसमें सब है। पृथिवीमें फूलमें जो गन्ध आती है वह सूर्यसे आती है। जलमें जो स्वाद आता है वह सूर्यसे आता है, अग्निमें जो तेज आता है वह सूर्यसे आता है। पुष्टिका देवता है। अब यह जो सूर्यकी शक्ति है वह सूर्य देवताकी अपनी शक्ति नहीं है, परमेश्वरकी शक्ति है। आज परमेश्वर आपको प्रकाश दे रहा है। आज परमेश्वर बादल करके सूर्यको ढक रहा है। आज उसकी रोशनीमें तेजी है, आज मन्दी है।

अनन्यचेताका अर्थ क्या हुआ? यह कि भगवान्‌की हाँमें हाँ मिलाइये। ये जो बड़े लोग होते हैं, उनकी हाँमें हाँ न मिलाओ तो पसन्द नहीं करते। वे चाहे कुछ भी बोल रहे हों, एक बार उनके सामने हाँ करनी पड़ती है। एक सज्जन हैं, सम्पन्न हैं, वे कोई बात करते हैं तो कहते हैं—नहीं-नहीं, स्वामीजी आपने बहुत बढ़िया बात कही। लेकिन उनके मुँहसे 'नहीं' पहले जरूर निकलता है। उसके बाद कहते हैं स्वामीजी आपने बहुत बढ़िया बात कही। ईश्वरकी हाँ में हाँ मिलाओ। अनन्यचेताका अर्थ है—जो ईश्वरका ज्ञान है, वही हमारा ज्ञान है। ईश्वरके ज्ञानमें आज गरमी है तो हमारे लिए भी गरमी है। उसके ज्ञानमें सरदी है तो हमारे ज्ञानमें भी सरदी है। वह मृत्युका रूप धारण करता है तो मृत्यु ठीक है। वह जीवनका रूप धारण करता है तो जीवन है। जीवनं सर्वभूतेषु वही है। सबमें जीवन वही है। और मृत्यु

भी वही है। अमृतश्चैव मृत्युश्च—जैसा है—भगवान्‌की हाँमें हाँ मिलाओ। ॐ माने हाँ संस्कृत भाषामें हाँ होता है। गामानय मालिकने कहा—गाय ले आओ तो सेवकने कहा ॐ। तो ईश्वरकी हाँमें हाँ मिलाओ यह अनन्य चेता हुआ।

अब एक बातपर आपका ध्यान खीचते हैं। यो मां स्मरति-में नित्यशः और सततं दो हैं। एक वार फिर नित्ययुक्ताः योगिनः में नित्य है। अब दर्शनशास्त्रकी एक बात सुनाता हूँ। जो आदेश या विधान अशक्यानुष्ठान होता है वह अप्रमाण होता है। अर्थात् जिसको कोई कर ही न सके, ऐसा काम अगर करनेको कहा जाय तो उस कामको अप्रामाणिक मानना चाहिए। वह आदेश ही प्रमाण नहीं होता। जैसे कोई आज्ञा दे कि तुम अपने कन्धेपर बैठ जाओ। यह अशक्यानुष्ठान हो गया न! ऐसा कोई कर नहीं सकता है।

जो कर्ता है वह कर्म नहीं हो सकता। यह व्याकरणशास्त्रका नियम है। अब 'नित्यशः सततं माम् स्मरति।' सततं माने लगातार। जैसे कपड़ा बनाते हैं तो सूत एक-से-एक जुड़े होते हैं, उसको सातत्य बोलते हैं, सतत बोलते हैं—सतत माने ताना-बाना। कोई कपड़ा बनाते हैं तो उसमें एक ताना होता है, एक बाना होता है—लम्बा सूत और आड़ा सूत, उसको ताना-बाना बोलते हैं—और दोनों एकमें मिलकर कपड़ा बनाते हैं।

सततंका—अर्थ है कि जैसे एक सूतसे दूसरा सूत मिला हुआ होता है ऐसे ही हमारा मन भगवान्‌से निरन्तर मिला हुआ होवे—सततं। देखो इसमें थोड़ी अशक्यानुष्ठानकी आशंका है। भले आप निरन्तर-निरन्तर चिल्लाओ—निरन्तर होना शक्य नहीं है। आपको नींद आती है तो स्मरति कैसे होगा? नींदमें स्मरण नहीं होता। अनुभव तो होता है। जैसे तत्त्वज्ञानी लोग

जब परमेश्वरको पहचान लेते हैं, तो निद्रामें भी उनका अनुभव खण्डित नहीं होता है। अनुभव तो खण्डित नहीं होता परन्तु स्मृति तो वृत्ति है, वह कैसे खण्डित नहीं होगी? इसलिए नित्यशः का अर्थ है प्रतिदिन। थोड़ी देरके लिए बैठ जाइये या काम करते रहिये परन्तु आपका नियम हो भगवत्-स्मरणका और पाँच मिनट, दस मिनट, आध घण्टे नित्यशः, प्रतिदिन एक नियमके अनुसार, लगातार थोड़ा-सा समय आपके जीवनमें ऐसा हो कि परमेश्वरका स्मरण करें। बीचमें दूसरी कोई वस्तु नहीं आवे।

एक सज्जन थे वे ८ बजेसे १० बजे तक लगातार भजन करते थे। किसीसे मिलते नहीं थे। चाहे घीका घड़ा ढरक जाय वह किसीसे मिलते नहीं थे। बादमें लोग उनके पास आते भी नहीं थे। कोई छेड़-छाड़ भी नहीं करता था। दो घण्टा चुपचाप बैठते थे। एक दिन कोई फकीर आया। हम मिलेंगे उनसे! तो उनके आदमीने बताया कि अभी भजनमें हैं तो उसने कहा वे भजनमें नहीं हैं। वह तो चमारकी दूकानमें जूता पसन्द कर रहे हैं और लौट गया। जब उठे तो नौकर बोला, महाराज, एक फकीर आया था वह ऐसे कह गया। वे बोले—कहाँ है फकीर? बुलाओ। सचमुच भजन करते-करते उनका मन चमारकी दुकानमें चला गया और वे जूता पसन्द करने लगे। मेरा मन तो ऐसा ही हो गया था। आप जरा अपने मनको देखिये। आपका मन कहाँ जाता है? सततं—तार टूटने न पावे। आप पूरी शक्तिसे एक बार भगवान्से हाथ मिलाइये।

हमारे गाँवमें तो एक ऐसे सज्जन थे जिन्होंने एक बार सम्राट् पंचम जॉर्जसे हाथ मिलाया था। सन् १६ में जब दिल्ली दरबार हुआ था, तब वे आये थे। इस बातकी यादसे वे जिन्दगीभर मस्त रहे—बोलते हमारे सरीखा और कौन है? उड़िया बाबाजी

कहते थे कि एक बार पूर्णताके साथ भगवान्‌का स्मरण करो, मस्ती आजायेगी। हाथ मिला लो, उनके गले लग लो, उनका हाथ अपने सिरपर रखवा लो, उनके पाँव छू लो, उनसे दो-दो बात कर लो। एक बार संसारकी ओरसे अपना मन हट जायेगा। स्मरति—नित्यशः स्मरति यावत् स्मरति तावत् सततं स्मरति।

सततम् शब्दका अर्थ संस्कृत भाषामें मजेदार भी होता है। जैसे वीणा बजाते हों तो सितारकी आवाज अलग होती है और वीणाकी स्वर-लहरी अलग होती है। जैसे वीणाकी स्वर-लहरी अखण्ड और आनन्ददायिनी होती है, ऐसे अपनी स्मृति अखण्ड और आनन्ददायिनी हो। आप धन पाकर सन्तुष्ट होते हैं। आप अच्छा भोजन करके तृप्त होते हैं। आप स्त्री-पुरुष मिलकर रम जाते हैं—तो स्त्री-पुरुषके मिलनमें मन जैसा रमता है, धनकी प्राप्तिमें जैसी सन्तुष्टि है, भोजनमें जैसी तृप्ति है, उन तीनोंका आनन्द लेकर और भगवान्‌से मिलनेकी लालसाको तीव्र कर दीजिए।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥८.१४॥

जब आप स्मरणमें रस लेंगे। गोपियोंकी स्थितिका वर्णन आता है—तन्मनस्का।

मन भगवान्‌में, चेष्टा भगवान्‌में, वाणी भगवान्‌में—आत्मा भगवान्‌में, शरीर भी भगवान्‌में, भगवान्‌के गुणका गायन करती हुई वह अपने आपको भूल गयी और घरको भूल गयी। माने देह, गेहविस्मृतिपूर्वक भगवत्-स्मरणमें तन्मयता। इसको श्रीकृष्णने स्वीकार किया। गोपियाँ ऐसी हैं।

गीता और भागवत—गीतामें अठारह अध्याय और भागवतमें अठारह हजार श्लोक हैं। श्री चैतन्य महाप्रभुने कहा कि गीताकी

व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि गीताकी व्याख्या तो भागवत है। उपनिषद्की व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है—क्योंकि उपनिषद्की व्याख्या तो भागवत है। जब व्यासजीने स्वयं टीका कर दी तो अलगसे टीका करनेकी आवश्यकता कहाँ ? ऐसे ही चैतन्य महाप्रभुने श्रीमद्भागवतकी महिमा बतायी। श्रीवल्लभाचार्यका तो कहना है कि जो वेद, उपनिषद्में स्पष्ट नहीं हुआ, जो गीतामें स्पष्ट नहीं हुआ, जो ब्रह्मसूत्रमें स्पष्ट नहीं हुआ उसको प्रकट करनेके लिए श्रीमद्भागवतका आविर्भाव हुआ है। यह तो चतुर्थ प्रस्थान है।

यो मां स्मरति नित्यशः तस्याहं सुलभः पार्थ।

गीतामें महात्माके लिए तो दुर्लभ शब्दका प्रयोग है, स महात्मा सुदुर्लभः—सुदुर्लभ है। महात्मा श्रद्धालुके लिए सुलभ है और तार्किकके लिए दुर्लभ है। यह सुलभ भी है, दुर्लभ भी है। क्योंकि महात्माकी रहनीको तर्कसे नहीं समझा जा सकता। जिन मान्यताओंमें संसारी लोग फँसे होते हैं, संस्कार बन्धन महात्माके जीवनमें देखनेको नहीं मिलते। संसारी लोग अपनी सीमाके बाहर किसीको देखना ही पसन्द नहीं करते। इसलिए वे महात्माको पहचान नहीं सकते। जो श्रद्धालु होगा उसके लिए तो महात्मा सुलभ है और जो कुतार्किक होगा उसके लिए दुर्लभ है।

एक बात आपको सुनाते हैं। क्या इस समय सृष्टिमें ऐसा कोई है ही नहीं, जिसको भगवान्‌का अनुभव हो, दर्शन हुआ हो ? ऐसा आप मानते हैं ? अगर ऐसा आप मानते हैं तो एक शाप लीजिये। डरिये मत। फिर आपको न भगवान्‌का अनुभव हो सकता है, न भगवान्‌का दर्शन हो सकता है। जब दुनियामें किसीको भी भगवान्‌का अनुभव और दर्शन नहीं है तो आप अपने लिए कैसे

आशा करते हैं। आप क्या सारी सृष्टिसे कुछ विलक्षण हैं? आप भगवान्‌से ही दूर हो जाते हैं। भगवान्‌के अनुभवसे ही दूर हो जाते हैं—यदि आप ऐसे मान बैठते हैं कि संसारमें कोई भगवत्तत्त्वका अनुभवी या भगवान्‌का दर्शन करनेवाला नहीं है। पहले हुआ करता था, अब कालने भगवान्‌को दबा दिया है! भगवान्‌के सिरपर काल चढ़ बैठा। नहीं यह मान्यता गलत है। श्रद्धालुके लिए सुलभ है। और कुतार्किकके लिए दुर्लभ है, भगवान् बोलते हैं—**वासुदेवः सर्वम्**। सब परमात्मा है। वासुदेव तो सब है। महात्मा दुर्लभ है। अच्छा आओ हम भगवान्‌को ही सुलभ बनावें। भगवान् दुर्लभ नहीं हैं, सुलभ है।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।

देखो, हृदयसे भगवान्‌के साथ मिल जाओ। नित्य युक्त होकर अपने जो कर्तव्य कर्म हैं, उनका पालन करते रहो। **योगिनः**।—नित्य युक्त होना और योग होना। व्यवहारमें योगी होओ, अपने कर्त्तव्यका अपने साधनका ठीक-ठीक अनुष्ठान करो और भीतरसे भगवान्‌से मिले रहो। भगवान् कहते हैं मैं उसके लिए सुलभ हूँ। अनन्य—आपको क्या सुनावें—पुस्तकोंमें तो ऐसा पढ़ा है। महाभारत पढ़े बिना गीताके अर्थज्ञानमें थोड़ी-सी बाधा पड़ती है क्योंकि गीताके सिद्धान्तका, व्यावहारिक पक्ष जो है वह पूरे महाभारतमें है और महाभारतका प्रतिपाद्य वीररस नहीं है—शान्त रस है। बड़े-बड़े विद्वानोंने अनुसन्धान किया है—महाभारतका। जुआ खेलनेमें क्या दुःख है, युद्ध करनेमें क्या दुःख है। राजा होनेमें क्या दुःख है। यह तो दुःखका प्रतिपादन है और शान्तरस महाभारतका प्रतिपाद्य है। बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं इसपर। एक लक्षाभरण नामकी टीका है महाभारतपर। लाख श्लोकोंका आभूषण वह अर्जुन मिश्र नामके व्यक्तिने जगन्नाथपुरीमें लिखी है। **योगक्षेमं**

वहाम्यहम्। पर उनको शंका हुई और स्वयं भगवान् उनके घरमें टोकरीमें चावल, दाल, सब्जी, घी, दही अपने सिरपर लेकर उनके घरमें आये। वहामि—यह तो पुस्तकोंमें पढ़ी हुई बात है। ददामि नहीं वहामि है।

एकनाथजीको कोई सेवक नहीं मिलता था। पानी भरनेवाला नहीं था। भजनमें बाधा पड़ती थी तो श्रीखंडिया बनकर भगवान् इनके घरमें आये।

योगक्षेमं वहाम्यहम्। अब इससे बढ़कर सुलभता क्या होगी ? कि कहीं अपने भक्तके बदलेमें किसी मालिकका पाँव दबाने आये। कहीं अपने भक्तके घरमें पानी ही भरनेके लिए आते हैं। किसीके घरमें भोजन पहुँचानेके लिए आते हैं।

मैंने देखा है—ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब हमारे पास पैसा नहीं है कि हम रेलगाड़ीसे यात्रा करें और उस समय कोई एकाएक अनजान आदमी हाथमें नोटोंका बण्डल लेकर आया उस आदमीको देते समय तो हम नहीं समझ पाते हैं कि ये भगवान् हैं, परन्तु बादमें मालूम पड़ता है कि या तो यह भगवान्‌का दूत होगा, उनका भेजा हुआ आया है या भगवान् आये होंगे। कहीं हम भूखे होते हैं—एक बार नहीं अनेक बार ऐसा अवसर मेरे जीवनमें आया है कि हमारे पास खानेको नहीं है, हम दिनभरके भूखे हैं, थके-माँदे हैं और रातको ११-१२ बजे हमारे सामने खानेकी वस्तु रख देता है। आप भगवान्‌की करुणापर—उनकी कृपापर विश्वास कीजिये। आपके रूखे मनको स्मृति भी वही देते हैं। आप उनकी ओर देखिये तो सही !

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

सुलभका अर्थ इसी जीवनमें सुलभ है। ईसाई और

मुसलमान ऐसा मानते हैं कि इस जीवनमें तो ईश्वरका दर्शन कभी होगा ही नहीं। जब आप मरेंगे तब भी ईश्वरको देख नहीं पायेंगे। उनके जो पैगम्बर हैं, उनके जो पुत्र हैं, उनकी सिफारिश-के अनुसार आप स्वर्गके राज्यमें चले जायेंगे। परन्तु ईश्वरका दर्शन आप नहीं कर पायेंगे। आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी ईश्वरका दर्शन मानते हैं। यह तो जिस ईश्वरमें साकार होनेका सामर्थ्य है वह वैदिक ईश्वर है। जो सम्पूर्ण विश्वके रूपमें साकार हुआ है, वही व्यक्तिके रूपमें भी साकार होकर आता है। साकार माने शकल—सूरतवाला। जो सम्पूर्ण विश्व—सर्वं समाप्नोति ततोसि सर्वम्—भगवान् सर्व है क्योंकि वह कार्यमें उपादानके समान घड़ेमें मिट्टीके समान व्यापक है। वह केवल निमित्त कारण नहीं है जैसा कि आर्यसमाजी, ईसाई, मुसलमान मानते हैं। उपादान कारण भी वही है। येन सर्वमिदं ततम्। त्वया ततं विश्वमनन्त-रूपम्। मया ततमिदं सर्वम्। येन सर्वमिदं सर्वम् त्वया ततमिदं सर्वम् और मया ततमिदं सर्वम्।—देखो तीनों हैं वह। सबमें भरपूर हैं, तुम सबमें भरपूर हो, मैं सबमें भरपूर हूँ। यह गीता है। जो सबका रूप ग्रहण कर सकता है, वह क्या एक व्यक्तिका रूप ग्रहण करके हमारे सामने नहीं आ सकता। इसी जीवनमें ईश्वरकी प्राप्ति होती है। गीताका ईश्वर, उपनिषद्का ईश्वर इसी जीवनमें प्राप्त होता है। जो यहाँ है वही वहाँ है—जो वहाँ है—वही यहाँ है। बाहर-भीतर सभी परमेश्वर है।

> मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
> नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
> आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
> मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥८.८.१६॥

बारम्बार जन्मना और मरना क्या है। यह बात आप छोड़

दीजिये कि एक शरीर छूटता है, दूसरा शरीर मिलता है। वह भी पुनर्जन्म है। परन्तु यह जो हमारा मन किसीको काटने दौड़ता है तो साँप हो जाता है, किसीसे मीठा बोलता है तो कोयल हो जाता है। हमारे मनके रूप बदलते रहते हैं। किसीके प्रति जब उदार हो जाता है तब विष्णु हो जाता है। किसीके प्रति जब कठोर होता है तब प्रलयंकर हो जाता है। यह हमारा मन दिन-भरमें सैकड़ों जो रूप बदलता है, यह क्या है? यह मनका जन्म-पर जन्म, जन्मपर जन्म—शकल-सूरत बदल जाना, उसीका नाम तो जन्म है न! दूसरे आकारकी प्राप्ति ही तो जन्म है—सूक्ष्म शरीर, दूसरे आकार।

भयस्थान-सहस्राणि शोकस्थान-शतानि च।

सैकड़ों बार आप डरते हैं और सैकड़ों बार आप शोकसे ग्रस्त हो जाते हैं। चिन्तासे मुँह लटकता है। घोड़ेकी तरह दौड़ते हैं। हाथीकी तरह मन्द गतिसे चलते हैं। कभी भोग्य हो जाते हैं, कभी भोक्ता हो जाते हैं। कहीं जीवनमें स्थिरता तो है नहीं। जब परमेश्वरकी प्राप्ति होती है—**मामुपेत्य**—तो यह पुनर्जम है बारम्बार बारम्बार बदलना। एक स्त्री है, जब अपने पतिसे प्रेम करती है तो प्रार्थना करती है कि जन्म-जन्म हमारे यही पति हों। कई व्रत ऐसे आते हैं जैसे वटसावित्री व्रत है। हरतालिका व्रत होता है। तो उसमें स्त्रियाँ जब व्रत करती हैं तब कहती हैं कि हे भगवान्! जन्म-जन्म हमारे यही पति हों। यहाँ मन प्रसन्न है। और जब मन नाराज होता है तब कहती हैं—हे भगवान्! कहाँ फँस गयी—अब कभी हमारा जन्म हो तो ऐसे पति न मिलें। यह बात स्त्रीके लिए ही नहीं है, पुरुषके लिए भी है। पुरुषके मन-में भी ऐसा आता है।

आपका जन्मपर जन्म, मृत्युपर मृत्यु—एक बार ईश्वर

से मिल जाइये। स्त्रीमें भी परमात्मा है पुरुषमें भी परमात्मा है। बालकमें भी परमात्मा है। बालिकामें भी परमात्मा है। जो वृद्ध लोग जवानोंका तिरस्कार करने लगे हैं—हम बुजुर्ग हैं, हमारी दाढ़ी सफेद है, हमारा इतना अनुभव है, तुम अभी लड़के क्या जानते हो ? यह बात अच्छी नहीं है, उनका आदर करना चाहिए। वे भी वृद्धि लेकर आते हैं। वे नये युगको समझते हैं। नन्दबाबाने तो श्रीकृष्णका इतना आदर किया, कि श्रीकृष्णने कहा कि कुलपरम्परासे आयी हुई इन्द्रकी पूजा छोड़ दो और पर्वतकी पूजा करो। वनकी पूजा और पर्वतमें रहने-वाले पहाड़ी, जंगली लोगोंको खिलाओ। गायोंकी पूजा करो। नन्दबाबाने श्रीकृष्णकी बात मान ली और अपनी पुश्तैनी बात छोड़ दी। यह है क्रान्ति—जवानोंका आदर। यह सृष्टि जन्म-मरणके चक्करमें पड़ी है। आप भगवान्‌के पास पहुँच जाइये।

भगवान्‌के लिए गोपियोंने कहा **नवंप्रियः नित्यं** उनको तो नया-नया प्यारा लगता है। **नित्यं नवंप्रियः**। हमको प्रतिदिन नयी-नयी चीज अच्छी लगती है। आप भोग लगाते हैं—नयी-नयी चीजका भोग लगाइये और नया-नया फूल चढ़ाइये। नयी-नयी भाषामें—डायलॉग रटकर मत बोलिये—आपके मनमें जो नया-नया भाव उठे वह भगवान्‌के साथ जोड़िये। क्योंकि वह जो पुनर्जन्म है यह दुःखालय है। अशाश्वत है। यह भी नहीं रहेगा। अशाश्वतका अर्थ है, आज तो है, आगे नहीं रहेगा और इसको पकड़ रखनेमें बड़ा दुःख है, बदलनेमें भी दुःख है। इसके त्यागमें भी दुःख है, ग्रहणमें भी दुःख है। भगवान्‌की जब प्राप्ति हो जाती है तब यह दुःखालय—दुःखालयका वर्णन विस्तारसे करनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि आप गौरसे देखेंगे तब मालूम पड़ेगा कि आपका हृदय—दुःख माने क्या ? दुःख माने आपका जो हृदया-काश है उसमें बादल छा गये, उसमें तूफान आगया, उसमें आग

लग गयी। जब क्रोध आता है तो आपके दिलके भीतर क्रोधकी आग लगती है तब आप जलने लगते हैं। जब लोभकी बाढ़ आती है तब आप उसमें डूबने लगते हैं। जब कामकी आँधी चलती है तो आप उसमें उड़ जाते हैं—आपका हृदय दुःखालय हो रहा है। क्योंकि आप आगे नहीं बढ़ रहे हैं। परमेश्वरकी ओर नहीं जा रहे हैं—परमेश्वरकी ओर नहीं बढ़ रहे है। महात्माका यह लक्षण है कि वह पकड़ लेते हैं भगवान्को, भगवान्के पास होते हैं और ये जन्म-मरणके अशाश्वत चक्करसे छूट जाते हैं। उनका अन्तः-करण शुद्ध है।

महात्मा कौन है ? जिनको संसिद्धि मिल गयी है। ससिद्धि क्या है ? आराधनामें, साधनामें तत्पर हैं। वह उनके लिए स्वाभाविक हो गयी है। साध, राध, सिद्धि—एक ही अर्थमें इन शब्दोंका प्रयोग होता है। संसिद्धौ—आराधना—राधा—आराधिका—राधिका—साधना—सिद्धि। आपके हृदयमें साधना आगयी। आप महात्मा हो गये। अब आपके लिए दुःखमय पुनर्जन्मका कोई डर नहीं है। आप भगवान्के पास पहुँचते हैं। बच्चा जब अपने माँ-बापसे दूर होता है, डरता है, कोई हमारी चीज छीन न ले। हमको कोई तकलीफ न दे। जब माता पिताकी गोदमें आ जाता है, तब उसके लिए कोई भय नहीं रहना।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥८.१६॥

यह आने-जानेका चक्कर कहाँ तक है ? ब्रह्मलोकपर्यन्त। काकभुशुण्डिने तो ऐसा वर्णन किया है कि मैंने अपनी आँखसे देखा है कि पहले एक चींटी थी अब वह पुण्यकर्मके उत्कर्षसे ब्रह्मा हो गयी है और देखा एकको जो ब्रह्मा थे, पुण्य समाप्त होते ही चींटी हो गये। यह योगवासिष्ठमें भुशुण्डिने अपने अनुभवका

वर्णन किया। हमने ऐसा युग देखा है जिसमें बिना यज्ञोपवीतके ब्राह्मण हुआ करते थे और ऐसा युग देखा है जिसमें यज्ञोपवीत-धारी क्षुद्र हुआ करते थे। यह सृष्टि बदलती है। हम जैसा चाहते हैं, वैसी ही नहीं रहती। आप इस परिवर्तनको स्वीकार करते हैं कि नहीं! आप परिवर्तनको स्वीकार करेंगे तो सुखी रहेंगे। यदि परिवर्तनसे लड़ेंगे तो दुःख ही मिलेगा।

यहाँ अधिकांश नंगे सिर बैठे हैं। किसीके सिरपर टोपी है। आप अपने सिरपर पगड़ी बाँधते होंगे या बँधी हुई लगाते होंगे। पिता भी टोपी लगाते होंगे या पगड़ी रखते होंगे। बगलबन्दी पहननेवाले आपने देखे होंगे। आपके ही पिता, पितामह बगलबन्दी, शेरवानी पहननेवाले होंगे। आप स्वयं परिवर्तनके पक्षपाती हैं। आपके पिता, पितामह कैसे बाल रखते थे, आप कैसे बाल रखते हैं? वे कैसे कपड़े पहनते थे। आप कैसे कपड़े पहनते हैं? आपके घरमें पहले जो चौका था उसमें ब्राह्मण या घरके लोगोंके सिवाय कोई दूसरा जाता नहीं होगा। नौकर परोसता नहीं था। आप परिवर्तन स्वयं कर रहे हैं। पहलेको लेकर रोवें तो आप दुःखी हो जायेंगे।

ब्राह्माजी भी बदलते हैं—ब्रह्मा कभी लाल होते हैं, कभी काले होते हैं। कभी सफेद होते हैं, कभी चार मुँहके होते हैं, कभी सोलह मुँहके होते हैं, कभी बत्तीस मुँहके होते हैं—कभी चौंसठ मुँहके ब्रह्मा होते हैं। एक साथ करोड़ ब्रह्माण्डमें करोड़ ब्रह्मा होते हैं। श्रीकृष्ण-कथामें आता है—ब्रह्मा अपने गणोंके साथ श्यामसुन्दरके पास गये तो वहाँ चन्द्रानना सखीने पूछा—'तुम कौन हो?' ब्रह्मा हैं। अरे बाबा ऐसे मत बोलो, साफ-साफ बताओ, किस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हो? तुम्हारे जैसे ब्रह्मा यहाँ सैकड़ों रोज आकर धूल चाटते रहते हैं। क्या होते हो तुम?

गर्गसंहिताके प्रारम्भमें ही यह कथा है। ब्रह्मा और ब्रह्माण्ड सब बदलता रहता है। विष्णु भी कभी सफेद होते हैं। यह आपको मालूम है—शुक्लाम्बरधरं विष्णुं—पीताम्बर नहीं है, शुक्लाम्बर है। आपके ध्यानमें है, शशिवर्णं—कृष्णवर्णं नहीं है, चन्द्रमाका रंग है। यह परिवर्तन सारी सृष्टिमें होता रहता है। पुनरावर्तन होता है। एकके बाद दूसरा, दूसरेके बाद पहला। परन्तु भगवान् मिल जायँ तो—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

यह परिवर्तनका चक्कर ही छूट जाता है। ब्रह्माके भी दिन-रात होते हैं। सहस्रयुगपर्यन्तं। उसका एक माप है। चौवालीस लाख वर्षसे कुछ अधिक चतुर्युगी होती है—सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है। उतनी ही बड़ी रात होती है। उसके हिसाबसे उनका महीना होता है। फिर उनका वर्ष होता है। फिर सौ वर्ष उनकी आयु होती है। सहस्रयुगपर्यन्तं। यह बताते हैं कि ब्रह्मा भी अनित्य हैं—उनमें भी पुनरावृत्ति है। यह सृष्टि ब्रह्माके साथ मरती है, ब्रह्माके साथ पैदा होती है। परन्तु एक परमेश्वर वह अव्यक्त है, उसीसे यह सब आता है—उसीमें यह जाकर मिलता है।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥८.१८॥

वह अव्यक्त, परमात्मा प्राप्त हो जाय तो यह हुई परमगति-की प्राप्ति।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति !



प्रवचन : ८

अम्ब त्वां अमसन्दाधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ।

ब्रह्माजीकी भी एक आयु होती है। उनकी कुरसी भी एक दिन उलट जाती है। कालका चक बड़ा प्रबल है। इसमें रहकर कोई अजर, अमर, अविनाशी नहीं हो सकता। भगवान् श्रीकृष्ण करुणाकी मूर्ति हैं, वात्सल्य और स्नेहके स्वरूप हैं। वे इस जीवात्माको काल-चक्रसे ऊपर उठाना चाहते हैं। कालके चक्करमें मत पड़ें। प्राचीन ग्रन्थोंमें सात दिनोंका कोई वर्णन नहीं आया है। बहुत प्राचीन ग्रन्थोंमें—हजार दो हजार वरसोंके अन्दर ही यह सात दिनकी कल्पना हुई है। परन्तु अहर्गण पहलेसे ही हैं। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन फिर एक महीना, छः महीना, एक वर्ष—कालकी गणना ऐसे की गयी है। ब्रह्माजीकी भी एक आयु होती है। जैसे हमारी एक चतुर्युगी होती है, आप जानते हैं—चार लाख बत्तीस हजार वर्षका कलियुग होता है। इसका दुगुना द्वापर होता है। कलियुगका तिगुना त्रेता और चौगुना सत्ययुग होता है। यह कालचक्रका हिसाब है।

ब्रह्माका एक दिन—आप चौदह घण्टेका मान लें। इकहत्तर चतुर्युगी उसमें होती है। चौदह घण्टेका ब्रह्माका एक दिन और एकहत्तर मिनिटका एक घण्टा। एक चतुर्युगी-मिनट—एक मिनटमें हम लोगोंका चौवालीस लाख बरससे ज्यादा। यह तो उनका एक मिनट है। इकहत्तर मिनटका एक घण्टा मानें तो उसमें इकहत्तर बार यह चतुर्युगी, और सन्ध्या सहित एक सहस्र चतुर्युगी—इस हिसाबसे उनका महीना। महीनेके

हिसावसे संवत्सर। संवत्सरके हिसाबसे वर्ष, और सौ वर्ष ब्रह्माकी आयु है। तो इस प्रकार वह भी कालके चक्रमें है।

पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है, ब्रह्माजीका विष्णुके एक क्षणमें सौ वर्ष होता है। विष्णुके क्षणके हिसाबसे उनका दिन उनका महीना, उनका वर्ष। ब्रह्माण्डका जब क्षय होता है तब विष्णु, विष्णुके रूपमें नहीं रहते। वे निराकार परमेश्वरमें मिल जाते हैं। पर ऐसा जो विष्णुका सौ वर्ष है वह शंकरजीका एक क्षण मात्र है। संहारके देवता तो वे ही हैं। फिर उनका दिन, उनका महीना, उनका वर्ष। शंकरका सौ वर्ष, निराकार परमेश्वरका एक संकल्प है और वह निराकार ईश्वरका जो संकल्प है, वह निर्गुण, निराकार, परब्रह्म परमात्माकी कल्पना मात्र है। वास्तविक नहीं है।

अविनाशी परमात्माको समझानेके लिए यह प्रक्रिया स्वीकार की गयी। एक बार सुन लेंगे तो आपके संस्कारमें यह बात रहेगी। जो परमात्माकी प्राप्ति है यह चतुर्युगी या सहस्र चतुर्युगी या ब्रह्माकी आयु, विष्णुकी आयु, शिवकी आयु, निराकारका संकल्प इसका नाम परमात्माकी प्राप्ति नहीं है। परमात्माकी प्राप्ति, जहाँ काल है ही नहीं, कालकी कलना जहाँ नहीं है, संकल्प जहाँ नहीं है—उस परमात्माकी प्राप्ति होती है। यहाँ ब्रह्माकी आयुका जो वर्णन आया, यह वैराग्यके लिए है। यदि आप अविनाशी वस्तुको प्राप्त करना चाहते हैं तो यह ब्रह्माजीके मिनट, दिन और उनकी आयुमें जो रहनेवाली चीज है उसको मत चाहिए।

> अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
> रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥
> भूतग्रामः स एवायं भूत्वा-भूत्वा प्रलीयते।
> रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

बस, यह दिन रातका चक्कर—चाक घूम रहा है। पहियेका चाक घूम रहा है—चक्र है। रात हुई तो सब अव्यक्तमें लीन हो गया। दिन हुआ ब्रह्माका तो सब निकल आया।

इसका एक अर्थ और है। आपके सोनेमें जो चीज नहीं मालूम पड़ती है या नहीं रहती है, वह आपका मन है और आपके जागनेसे जो चीज रहती है वह भी आपका मन है। वस्तुका स्पर्श मत कीजिये, आपकी जाति, आपका मजहब, आपकी भाषा—जिसमें अभिनिविष्ट होकर आप दूसरोंका सिर काटनेके लिए तैयार हो जाते हैं। आप जब सोते हैं तब क्या आपकी भाषा रहती है? कौनसी भाषा रहती है? माँके पेटमें थे तब आपकी कौन-सो भाषा थी? आपकी कौन-सी जाति है? कौन-सा मजहब रहता है? आपका क्या नाम रहता है? आपके कौन-से रिश्तेदार रहते हैं? जब आप सोते हैं तो आपके मनकी सारी कल्पना आपके साथ सो जाती है और जब जागते हैं तब सारी कल्पनाएँ उठकर आजाती है। सोनेतक ही जिन चीजोंका भान रहता है। उनको आप इतना कीमती क्यों समझते हैं। उनके लिए आपके जीवनमें काम आये, क्रोध आये, लोभ आये, मोह आये—यह वैराग्यके लिए है। इसीसे भूतग्राम बोलते हैं।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥८.१९॥

मेरे प्यारे भाई; पार्थ माने होता है—प्यारे भाई। पृथा-कुन्ती है—श्रीकृष्णकी बूआके लड़के। 'पार्थ' शब्दसे जब सम्बोधित करते हैं—पुकारते हैं तब पार्थ-माने हमारे फुफेरे भाई। हमारे सम्बन्धी हो। 'भक्तोऽसि मे', 'सखा चेति'—केवल सम्बन्धी ही नहीं हो—मेरे भक्त भी हो। 'इष्टोऽसि मे दृढमिति'—तुम मेरे

इष्ट हो, मैं तुम्हारा सेवक हूँ। यह हमारा भगवान्। दुनियामें किसी मजहबका ईश्वर अपने भक्तको अपना इष्ट नहीं कह सकता। आप लोगोंने 'कुरान' आदि ग्रन्थ भी पढ़े होंगे—कोई भी भगवान् अपने भक्तको अपना इष्ट कहे, ऐसा नहीं है।

अर्जुन, मैं तुम्हारा पुजारी हूँ, तुम्हारा सेवक हूँ, यह बोलनेकी शैली है। अन्धेको अन्धा कहकर नहीं पुकारना चाहिए। भगतजी बोलो, सूरदास बोलो, प्रज्ञाचक्षु बोलो। जो लोग सचके नामपर कड़वा बोलते हैं, वे बोलनेमें कहाँ धर्म अधर्म होता है, इसको नहीं समझते। व्याकरणके ग्रन्थोंमें लिखा है—कानेको काना कहकर नहीं पुकारना चाहिए, और यहाँ तो भगवान् अपने भक्तको इष्ट कहकर पुकारते हैं। इष्टोऽसि मे मेरे तुम इष्ट हो, प्यारे हो। दो ही चीजमें तो व्यवहार है। आप दूसरेको नुकसान पहुँचाना चाहते हैं क्या? आपको अभी व्यवहार नहीं आता। आप वाणीसे कटु बोलते हैं क्या? तब भी आपको व्यवहार नहीं आता। आप दुनियामें मित्र नहीं शत्रु बनाना चाहते हैं।

मेरे प्यारे भाई! यह भूतग्राम है। बहुत मजेदार बात हुई न! भूतोंके बारेमें तो आपने सुना ही होगा। यह भूतोंका गाँव है। भूतोंका गाँव माने जहाँ गाँव न हो वहाँ गाँव मालूम पड़े। जहाँ आदमी न हों वहाँ आदमी मालूम पड़े। यह वेदान्तकी बात हो गयी। एक सज्जन जाकर श्मसानमें बैठे। उन्होंने देखा कि वहाँ तो ब्याह है किसीके घरमें। लड़कीका घर है, लड़केकी बारात आरही है। बाजे बज रहे हैं, मङ्गल-गान हो रहा है। खानपान हो रहा है। उनके मनमें आया कि मैं भी शामिल हो जाऊँ। जब उठकर वह बारातीकी ओरसे शामिल होने लगा तो वहाँ कुछ नहीं। न लड़की, न लड़का, न बारात। इसको बोलते

हैं भूतग्राम। यह परमात्माके स्वरूपमें—जो भूतोंका गाँव दीख रहा है, यह अपने अत्यन्ताभावके अधिष्ठानमें दीख रहा है। यह वेदान्तकी भाषा है। जो चीज जहाँ न हो वहाँ यदि वह दिखायी पड़े तो उसको क्या बोलेंगे? दिखायी पड़ती है इसलिए झूठ नहीं कह सकते और वहाँ है नहीं, इसलिए सच नहीं कह सकते। उसका नाम होगा अनिवर्चनीय मिथ्या—जैसे आकाशमें नीला रङ्ग नहीं है, दिखायी पड़ता है।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।

पैदा होता है और लीन होता है। रातके समय लीन हो जाता है और दिनके समय दिखायी पड़ने लगता है, है क्या? बोले ठीक है—इसीको बोलते हैं—अव्यक्त।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२.२८

क्यों रोते हो? रोना-धोना किसलिए? न जाने कहाँसे एक चीज टपक पड़ी थी। एक जादूगर था। उसने कहा चल और एक चीज पटसे गिर पड़ी। थोड़ी देरमें फिर उसका दीखना बन्द हो गया। अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनंगतः। जिसको तुम नहीं देख रहे थे वह तुम्हारे सामने आया था और फिर जैसे आया था, वैसे ही उड़ गया। अव्यक्तसे आया, व्यक्त हुआ—और फिर अव्यक्तमें चला गया। यह भूतग्रामको दशा है। अब बताते हैं कि एक तो यह आने-जानेवाली चीज है और दूसरे जहाँसे आती है वह चीज।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥८.२०

इस अव्यक्तसे—कार्य, उसको कहते हैं जो दीखता है, पैदा होता है, मरता है। उसका नाम हुआ कार्य। और जिसमें होता

है उसका नाम होता है कारण। जिस औजारसे हम उसको देखते हैं उसका नाम होता है 'करण'। जैसे रूप हम देखते हैं, उसका करण तेजस् तत्त्व है और उसको देखनेका करण नेत्र है। इसको असाधारण करण बोलते हैं। माने बिना आँखके रूप नहीं देखा जा सकता और मनको साधारण करण बोलते हैं। साधारण करण माने कानसे सुनोगे तब भी मन रहेगा। आँखसे देखोगे तब भी मन रहेगा। सब इन्द्रियोंमें साधारण करणके रूपमें मन रहता है। एक-एक विषयको प्रकाशित करनेवाली इन्द्रियाँ असाधारण करण होती हैं। जिस चीजको आप देख रहे हैं वह कार्य है और जिस उपादानसे—मसालेसे वह बनता है वह कारण है। अव्यक्तमें यह व्यक्त पैदा होता है और अव्यक्तमें लीन होता है। व्यक्त कहाँ होता है? जिसमें व्यक्त नहीं है, उसको अव्यक्त बोलते हैं। व्यक्त कहाँ नहीं रहता—जहाँ व्यक्त नहीं है। अव्यक्त हुआ आदि और अन्त तथा व्यक्त हुआ मध्य। इस अव्यक्तको प्रधान बोलते हैं—प्रकृति बोलते हैं, माया बोलते हैं—**तस्माद् अव्यक्तात् परः भावः अव्यक्तः** इस अव्यक्तसे परे एक दूसरा अव्यक्त है। माने यह अव्यक्त तो है प्रकृतिप्रधान और इससे परे है परमात्मा।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।

यह सनातन है, अविनाशी है, जो इस कार्य-कारण, करण सबसे परे है वह सनातन अव्यक्त है। भगवान् श्रीकृष्णने जनकका नाम तो लिया है दसवें अध्यायमें। विरक्त महात्माओंका नाम भी श्रीकृष्णने लिया है। परन्तु वे गीताका आचार्य किसी विरक्त महात्माको नहीं मानते। अद्भुत है, मान लो सोलह हजार पत्नी हों और इतने बड़े-बड़े महल हों और लाखों बेटे हों, और इतनी धन-सम्पदा हो, तो विरक्त महात्माको आचार्यके नामसे कैसे बोलेंगे। कैसे वर्णन करेंगे?

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥४.१॥

इक्ष्वाकु, मनु, सूर्य इनका नाम लिया और सबका आद्याचार्य अपनेको बताया। मैं ही आत्मा; परमात्मा हूँ। मैंने बुद्धिको यह ज्ञान दिया, मैंने मनको यह ज्ञान दिया। मैंने इन्द्रियोंको यह ज्ञान दिया। इन्द्रियाँ इक्ष्वाकु हैं और मनु मन है। और विवस्वान्—सूर्य—धियो यो नः प्रचोदयात्। सूर्य देवता हैं और सबको ज्ञान देनेवाले कौन हैं? स्वयं परमेश्वर श्रीकृष्ण। बोलनेका ढंग है—इस विद्याका गुरु कौन है? इक्ष्वाकु। उनका गुरु कौन है? मनु। मनुका गुरु कौन है? सूर्य। वह कर्मयोगी है। सूर्यका गुरु कौन है? छाती ठोंककर बोले—सबका गुरु मैं हूँ। ये गुरुघण्टाल सबके। यह ग्वारिया कहीं संकोच नहीं करता है? एक महात्मासे किसीने पूछा कि तुम अपनेको ब्रह्म क्यों कहते हो? उसने कहा कि तुम अपनेको मनुष्य क्यों कहते हो? बोले—हमको मालूम पड़ता है कि हम मनुष्य हैं—इसलिए हम अपनेको मनुष्य कहते हैं। बोले—हमको भी मालूम पड़ता है कि हम ब्रह्म हैं—इसलिए हम कहते हैं। जो मालूम पड़ता है वह बोलते हैं। इसमें तुमको क्या आपत्ति है? सूर्यमें जितनी विशेषताएँ मालूम पड़ती हैं, वे हमारी ही दी हुई हैं। मनुमें जितनी विशेषताएँ मालूम पड़ती हैं—वे हमारी ही दी हुई हैं। यह गुरु-परम्परा है। श्रीकृष्णने अपने चेलोंका नाम बताया और आदर्श बता दिया जनकको।

उपनिषद्में ऐसा वर्णन है कि यह विद्या पहले राजर्षियोंके हाथमें थी। ब्राह्मणोंके, विरक्तोंके हाथमें नहीं थी। जो राजा लोग होते थे, उनको इस विद्याका ज्ञान था। जब अश्वपतिके पास महात्मा लोग गये और प्रार्थना की कि हमको आप अपनी

विद्या बताइये तो उन्होंने कहा कि पहले-पहल क्षत्रियोंके—राजाओंके हाथसे निकलकर यह विद्या आपके—ब्राह्मणोंके हाथमें रही है।

श्रीकृष्णकी यह विद्या है। परमेश्वर कौन है ? वह प्रकृतिसे परे है। उसको पहचान बताओ। **यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।** एक बात बताइये कि उसके भीतर भी सारे प्राणी हैं—मिट्टी है, पानी है, आग है, हवा है, आकाश है, सारे भूत उसके भीतर हैं। **भू भवन्ति इति भूतानि।** जो पैदा होते हैं उसका नाम होता है भूत। भवन्—भव्य—यह पहले पैदा हुआ। अब यह हो रहा है—आगे यह पैदा होगा। यह सत्ताका जितना भी विस्तार होता है, उस परमात्माके भीतर ही रहता है, बाहर नहीं जाता। एक बात तो यह हुई कि हम लोग तो ईश्वरको अपना बनाकर रखते हैं। अच्छा है; अगर आप अपना बना लें। यह हमारा शरीर हमारे चामकी थैली है। इसमें हड्डी, मांस और सब मसाला भरा है। इसी थैलीमें परमेश्वरको हमने रख लिया है। परमेश्वर कहाँ है ? हमारे भीतर है।

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ परमेश्वरकी पहचान बताते हैं—**यस्यान्तःस्थानि भूतानि।** परमेश्वर तुम्हारे भीतर सीमित नहीं हैं, बल्कि तुम सब लोल परमेश्वरमें हो, जैसे तुम्हारे मनके पेटमें स्वर्गकी धरती, पानी, हवा, आग, आसमान, देश-विदेश, जाति, विजाति ये सबके सब स्वप्नकालमें तुम्हारे अन्दर होते हैं। वैसे यह परमेश्वर अपने मनके भीतर सबको देख रहा है। **यस्यान्तःस्थानि भूतानि।** हमारे पेटमें परमेश्वर है, यह हो गया प्रेम और परमेश्वरके पेटमें हम हैं यह हो गयी शरणागति। अपने बच्चेके प्रति शरणागति नहीं होती। अपने पिताके प्रति शरणागति होती है। जिसके पेटमें हम समा जायें उसकी शरण होती है। जो हमारे पेटमें समाया हुआ है, उसकी क्या शरण है ?. **यस्यान्तः**

स्थानि भूतानि। यह सम्पूर्ण भूतभव्यसृष्टि जिसके भीतर है, जो इसका आश्रय है, यह सृष्टि अलग हुई और ईश्वर अलग हुआ ? बोले—'नहीं।' यही तो विचित्र है। यह दुनियाके सब मजहबोंसे अलग है। यह न जैन-मजहबमें है, न बौद्ध-मजहबमें है। न इसाई-में है, न मुसलमानमें है। न पारसीमें, न सिक्खमें है, न यहूदीमें है। यह हमारे वैदिक सनातन धर्मकी विशेषता है। येन सर्वमिदं ततम्। 'ईश्वर कैसा ?' एक तो बताया सब उसके पेटमें, और दूसरी बात बतायी कि जैसे कपड़ेमें ताना-बाना दोनों सूत ही होता है, वैसे इस सृष्टिका ताना-बाना दोनों वही है।

अहमदाबादके साबरमती आश्रममें गाँधीजीका एक चित्र रखा है। पहले हमारे गाँवमें स्त्रियोंकी साड़ियाँ आती थी उसमें भी देखते थे। साड़ीमें मोर बने हुए रहते थे। सूतको ऐसे ढङ्गसे बैठा देते हैं कि रङ्ग नहीं डालना पड़ता। सूत ही मोर मालूम पड़ता है। कपड़ेसे अलग मोर नामकी कोई चीज नहीं है। वह गाँधीजीका चित्र भी एक कपड़ा है। उसमें डण्डा भी है, एक पाँव आगे है, एक पाँव पीछे। गाँधीजी यात्रा कर रहे हैं, परन्तु उसमें सूतोंके सिवाय कुछ नहीं है। आप लोग वस्त्रको जानते हैं, बनाते हैं, बेचते हैं, खरीदते हैं, पहनते हैं। यह क्या है ? वे गाँधीजी हैं कि सूत है ? जबतक आपकी व्यक्तित्वपर दृष्टि है और जब सूतको देखोगे तो आपकी दृष्टि उपादानपर चली गयी। यह जो सृष्टि दिखायी पड़ती है—यह चित्र है। गोस्वामीजीने क्या बढ़िया वर्णन किया—

शून्य भीत्तिपर चित्र रंग नहीं तनु बिनु लिखा चितेरे।

शून्यकी भीतपर यह चित्र बना हुआ है। कोई रङ्ग लगाया नहीं और लिखनेवालेके हाथ नहीं और कलम नहीं—तूलिका भी नहीं। रङ्ग भी नहीं, भीत भी नहीं और यह तस्वीर बन गयी। यह बात हमारे शैवाचार्योंने हजारों वर्ष पहले कही है।

यह जो जगत्‌की तस्वीर है कहाँ बनी ? बोले--परमात्मापर बनी। वही आड़ा सूत है। वही लम्बा सूत है। सूतका विन्यास—उसको इस ढङ्गसे जमाया गया कि यह दुनिया दीख रही है। यह दुनिया कोई अलग चीज नहीं है। परमेश्वर ही है। उसका नाम है परम पुरुष। ब्रह्माजीकी आयुका वर्णन क्यों हुआ ? आप यह जो चीज बनती-बिगड़ती रहती है जो मरता-जीता रहता है, उसको मत देखिये, देखिये उसको जिससे यह बना है। आप कभी जेवर खरीदें तो सिर्फ यही न देखें कि यह कितना सुन्दर है, इसकी शकल-सूरत कितनी अच्छी है, इसकी डिजाइन बहुत सुन्दर है, सिर्फ यह न देखें। यह देख लें कि यह चाँदी है या सोना है, पीतल है। यदि आप उसके धातुको नहीं देखेंगे तो ठीक-ठीक उसका मूल्यांकन नहीं हो सकेगा। इस जगत्-चित्रका मूल्यांकन करनेके लिए आपको इसकी मूल धातु देखनी पड़ेगी। सिर्फ आकृति, शकल, सूरत नहीं।

कनखलमें एक हरिवंशपुराण है, उसपर सोनेसे बने हुए चित्र हैं, अबसे पचास वर्ष पहले लाखों रुपये उसकी कीमत मानी जाती थी। तालेमें बन्द रखते हैं, पहरा लगता है। कोई देखना चाहे तो दिखा देते हैं। उसकी कीमत सोना और कला, दोनोंकी दृष्टिसे मानते हैं। **येन सर्वमिदं ततम्**। इस कपड़ेमें सूत क्या है ? खादी, रेशम, रेयोन, क्या है ? जिस सूतसे यह दुनियाका कपड़ा बुना गया, वह सूत क्या है ? कौन-सा रेशा है ? कौन-सी कपास है ? बनावटी रेशम है असली ? बनावटी रेशममें और मैसूरके असली रेशममें फरक होता है कि नहीं ! आपकी नजर वहाँ जाये कि यह है क्या ? **येन सर्वमिदं ततम्**।

भगवान्‌ने खुद ही कह दिया—**यस्यान्तःस्थानि भूतानि**। यह भगवान्‌की एक पहचान—नवें अध्यायमें आयेगी। **मत्स्थानि-**

सर्वभूतानि सारे भूत मुझमें स्थित हैं। और फिर बोले न च मत्स्थानि भूतानि। हमारे एक बुजुर्ग हैं—अब तो उनकी शताब्दी पूरी हो गयी—उन्होंने गीतापर टीका लिखी है। संस्कार भाष्य—उसका नाम है। आप लोगोंकी दृष्टिमें शायद न आया हो। क्योंकि उन्होंने बड़ा गुप्त और श्रेष्ठ जीवन विद्याकी सेवामें व्यतीत किया। अद्भुत है। उसको विद्वान् समझ सकता है कि क्या उसमें आश्चर्य है। उन्होंने उपनिषदोंके मन्त्रोंसे नहीं—संहिताओंके मन्त्रोंसे, वेदोंके मन्त्रोंसे ब्रह्मसूत्रकी संगति लगायी है।

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमः।

विद्वान् ही विद्वान्‌के परिश्रमको समझ सकता है। उन्होंने गीतापर जो टीका लिखी है, उसमें लिखा है कि यह श्रीकृष्णकी जबानका तो कुछ ठिकाना ही नहीं! ये महाराज बचपनमें तो ग्वालियोंमें रहे। सो अन्ट-सन्ट बोलनेका इनको अभ्यास हो गया। आदत पड़ गयी। एक बार बोलते हैं—मत्स्थानि सर्वभूतानि और एक बार बोलते हैं—न च मत्स्थानि भूतानि। देखो न, परस्पर विरोध! बोले मुझमें सब कुछ है और मुझमें कुछ नहीं है। आपको दिखा रहे हैं कि मुझमें है सब कुछ। अर्जुनको दिखा भी दिया ग्यारहवें अध्यायमें और वेदान्तीको दिखा रहे हैं—न च मत्स्थानि भूतानि। अज्ञानीकी दृष्टिसे जो कुछ है सो सब मुझमें है और तत्वज्ञकी दृष्टिसे मुझमें कुछ नहीं है। यह दृष्टिभेद है। अज्ञानीकी दृष्टि है—यस्यान्तःस्थानि भूतानि और तत्त्वज्ञकी दृष्टि है येन सर्वमिदं ततम्, मया ततमिदं सर्वम्।

नवें अध्यायमें येन नहीं कहते हैं। जिससे यह सारी सृष्टि बनी सो नहीं, बोले मुझसे यह सारी सृष्टि बनी है। मैं कपड़ेमें सूतकी तरह हूँ। त्वया ततं विश्वमनन्तं येन सर्वमिदं ततम्। बोले

भाई; वह मिलना चाहिए। आपको बताया आप ब्रह्माको मत चाहिए। आप ब्रह्माकी बनायी हुई सृष्टिको मत चाहिए। आप नाशवान् वस्तुके लिए प्रयत्न कीजिये। जिसकी बाँसुरी बिना बजाये बजती रहती है। एक बाँसुरी वह होती है जो फूँकनेसे बजती है, और एक बाँसुरी वह है जो बिना बजाये बजती रहती है। आनन्दकी धारा, अमृतकी धारा! बाँसुरी बाजोंमें सबसे बढ़िया मानी जाती है। क्यों? आप जानते हैं, कोई लकड़ी मारनेपर बजता है। कोई हाथ मारनेपर बजता है। कोई रगड़नेपर बजता है। कोई टिनमिन अँगुलीमें रिंग पहनकर करते हैं—से बजता है। बाँसुरी यह अपने प्राणोंसे बजती है। बाँसुरी सुशीरवाद्य है। इसका मतलब होता है, उसमें सिर्फ छिद्र होता है। आप अपने प्राणसे, अपनी साँससे उसमें-से ध्वनि, संगीत निकालते हैं। वह प्राणवासी है। परन्तु एक ऐसी बाँसुरी है—जंगलमें जो बाँस लगे होते हैं, उसमें हवा चलती है तो आवाज निकलती है और एक ऐसी बाँसुरी है जो बिना हवा चले ही बजती रहती है—वह है अमृतमयी स्वरलहरी कृष्णकी। वह है संगीत-लहरी श्रीकृष्णकी। वह बाँसुरी बजती है मिले कैसे, जिसमें सहज संगीत-माधुरी है, सहज सुखस्पर्श है। गीतामें लिखा है—सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते। ब्रह्मका भी स्पर्श होता है। ब्रह्मकी भी स्वरलहरी होती है, वह स्वरलहरी सुनायी पड़े, उसके स्पर्शका अनुभव हो, उसके सौन्दर्यका दर्शन हो, उसके माधुर्यका आस्वादन हो, उसके सौरभका आस्वादन हो। दिव्य सुगन्ध बह रही है, परन्तु न गुलाब है न चमेली। स्वाद आरहा है परन्तु मुँहमें न रसगुल्ला है न सन्देश। सौन्दर्य दीख रहा है पर किसकी सुन्दरता है, पता नहीं चलता। कौन है? क्या स्पर्श हो रहा है? न गुलाबकी पंखुड़ी है, न कमलकी। उसकी स्वरलहरी सुनायी पड़ रही है। कैसे देखें उसको, कैसे मिले वह? आपके मनमें कश्मीर

देखनेकी इच्छा होती है ? स्विटजरलैण्ड जानेकी इच्छा होती है ? सुनते हैं बहुत सुन्दर है।

एक महात्मा थे वृन्दावनमें। उनके शिष्यने कहा—आप चलिये कश्मीर देखकर आप मुग्ध हो जायेंगे। उन्होंने कहा—हमको आँख बन्द करनेपर जो सुन्दरता दिखाई पड़ती है—वह सौन्दर्य, वह माधुर्य, कहीं धरतीपर हो सकती है ? उस सुन्दरको देखनेसे आँख बन्द करनेपर भीतर दिखाई पड़ता है—उस सुन्दरको देखनेकी इच्छा होती है ? उसके मधुररसका आस्वादन करनेकी कभी इच्छा होती है ? स्वर्गका वर्णन जब पण्डित लोग करते हैं—वह नन्दनवन, वह अप्सरा, वह अमृतका पीना और वह हमेशाकी जवानी, वह भोग ! बस, मनमें इच्छा हो जाती है कि हम मरके वहाँ पहुँच जायें। मरना पड़े तो मरें लेकिन वहाँ पहुँच जायें। स्वर्गका वर्णन करके पण्डित लोग आपके मनमें लालच पैदा कर देते हैं। वह तो ऐसा होटल है महाराज कि पैसा पहले जमा करो—जब खतम हो जाये तो न निकले तो (अर्धचन्द्र देकर बोलते हैं) गरदनिया देकर निकाल दिये जायँ।

अतः, चाहें तो हम उस परम पुरुषको चाहें। जो कालातीत पुरुष है। देशातीत पुरुष है और सर्वमिदं ततम्—यह द्रव्यातीत पुरुष है। लोग तो ईश्वरको भी खरीदना ही चाहते हैं।

एक सज्जनने बम्बईमें किसी महात्मासे पूछा—'महाराज, कितना रुपया खर्च करें तो हमको ईश्वर मिल जाय।' बोले भाई ! रुपयेसे ईश्वर नहीं मिलता। क्या चाहिए उसके लिए ? तो उन्होंने कहा—'ईश्वरकी कृपा हो, महात्माकी कृपा हो तो ईश्वरका दर्शन हो जाय।'

अच्छा, ऐसा है—तो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये—ईश्वर मिल जाय। बोले—हमने तो जिन्दगीभरमें और कुछ कमाया नहीं है—हमारे पास मकान नहीं है, धन नहीं है, परिवार नहीं है। जिन्दगीभरमें कुछ कमाया है तो मात्र ईश्वरकी ही कमायी है। हमारी कमायी, हमारा सर्वस्व 'ईश्वर' लेना चाहते हो तो तुमने अपनी जिन्दगीमें जो कुछ कमाया है वह हमें दे दो। हम अपनी कमाई तुम्हें देते हैं। बोले बाबा, यह बात मत कहो। यह तो मुँहसे निकालो ही नहीं।

पुरुषः परः पार्थ—वह मिलता है—कैसे मिलता है? **भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**—अनन्यगामी, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पातिव्रत द्वारा अपने पतिको वशमें कर लेती है।

भक्तिके लिए यही दृष्टान्त भागवतमें दिया है। **वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।** जैसे सती स्त्री अपने सज्जन पतिको, अपने प्रेमके वशमें कर लेती है, वैसे भगवान्‌का भक्त अपनी अनन्य भक्तिके द्वारा भगवान्‌को अपने वशमें कर लेता है। यह भागवतके नवम स्कन्धका वचन है। गीतामें अनन्य भक्तिका बहुत वर्णन है। सगुण, साकारका दर्शन भी अनन्य भक्तिसे ही होता है। आप देखो—ग्यारहवें अध्यायके अन्तमें—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥११.५४

गुणातीत परमात्माकी प्राप्ति कैसे होती है?

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
सगुणां समतीतैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कैसे होती है?

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।

यह जो परमेश्वरके सिवाय—जबतक और-औरकी इच्छा है तबतक परमेश्वर और और देता है। एक महात्मा यह दृष्टान्त देते थे। एक पुरुष कहीं परदेश गये। राजा थे वहाँसे उन्होंने अपनी रानियोंको चिट्ठी लिखी कि तुम लोगोंको जो चाहिए सो लिख भेजो। हम यहाँसे लेते आयेंगे। किसीने कुछ मँगाया—किसीने कुछ। एक रानीने जो चिट्ठी लिखी उसपर और कुछ नहीं लिखा केवल 'एक' लिख दिया। राजाने सबकी चीज मँगा ली, पैकिङ्ग करा ली। सबके घरमें भिजवा दिया। उसके पास गये कि तुमने लिखा क्या था, समझमें नहीं आया। तो तुम्हारी माँग पूरी करनेके लिए मैं वहाँ से कुछ लेकर नहीं आया। क्योंकि कुछ समझमें ही नहीं आया कि क्या मँगाया था। स्त्रीने कहा—वह मुझे मिल गया। मुझे दूसरी कोई चीज नहीं चाहिए। मुझे जो 'एक' चाहिए था वह 'एक' मेरे घरमें आगया।

अनन्याका अर्थ क्या है? उद्देश्य एक, भाव एक, स्थिति एक और वस्तु एक। अनन्यताका चार स्तर होता है। जैसे आप किसीकी सेवा करते हैं—उसके लिए झाड़ू भी लगा देते हैं। कपड़े भी धो देते हैं। रोटी भी बना देते हैं। पंखा भी झल देते हैं। पाँव भी दबा देते हैं। मतलब यह कि काम तो आप बहुत करते हैं परन्तु किसके लिए करते हैं? एकके लिए करते हैं। काम तो आपके बहुत-से हैं परन्तु अनेन सर्वात्मा भगवान् प्रीयताम्, तृप्यताम्। इससे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न हों। एककी प्रसन्नताके लिए आप सब काम करते हैं। इसमें भी अनन्यता है, क्योंकि उसीके लिए करते हैं। इसमें अन्य नहीं है। जिसमें अन्य नहीं होता उसका नाम अनन्या। उसके लिए काम कीजिए। एक सज्जन खूब कमाई करते थे। पर जो कमाई उनके घरमें आती थी वह अपने निर्वाहमात्रके लिए जो

आवश्यक होती उतना ही रखते थे, बाकी गरीबोंकी सेवामें लगा देतें थे। गरीब उनके भगवान् थे। अन्नसे, वस्त्रसे, औषधसे सेवा करते थे। काम अनेक और उद्देश्य एक इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। इसको बोलते हैं धर्मभाव अनेक और भावका विषय एक। आप गोस्वामीजीको देखिये क्या बोलते हैं—

मोहि-तोहि नाते अनेक—मानिए जो भावे।

आपको जो पसन्द हो सो मानिये। आप मानिये हमारी पसन्द नहीं। तुम्हारी पसन्दका—

ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु चरण सरण पावै।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो॥

तुम्हीं मेरे पिता हो, तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्ही मेरे सखा हो, तुम्ही मेरे गुरु हो। इसमें क्या हुआ? मातामें, पितामें, भाईमें, गुरुमें भाव अनेक हैं परन्तु एक साथ ही हैं। अनेकके साथ नहीं है। भक्तिभाव बोलते हैं इसको आपके मनमें निन्यानबे वृत्ति हो—सौ वृत्ति हो, परन्तु जो एक सौ एक है उसमें एकके लिए हो। सौ काम हों एकके लिए हो। उसको अनन्य सेवा—अनन्य धर्म बोलेंगे। आपके मनमें सौ भाव हों परन्तु एकके लिए हो। चारों ओरसे घूमकर आइये। बाजारमें जाते हैं—विदेश जाते हैं—घूम-फिरकर कहाँ आते हैं? अपने घरमें। उपनिषद्में ऐसे है—स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धः दिशं-दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशंदिशं पतित्वा-न्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धन हि ᳲ हि सोम्य मन इति।
—छा० ६.८.२

एक चिड़िया रस्सीमें बँधी है इधर उड़ती है, उधर उड़ती है, फड़फड़ाती है, चिल्लाती है परन्तु अन्तमें जहाँ बँधी है वहीं आकर

बैठती है। वहीं मिलता है उसको विश्राम। ऐसे ही जो मनुष्यका मन है—यह छटपटाता है—यहाँ जाता है—वहाँ जाता है—फिर कहाँ आकर सोता है? एक पतिव्रता पत्नी है, वह भले ही बाजारमें सौदा खरीदनेके लिए जाय, भले मायके जाय, बहनके घर जाय, लेकिन सोनेका स्थान उसका कहाँ है? अपने पतिके पास। अपने पतिकी गोदमें। वह दूसरेके साथ नहीं सोती। इसी प्रकार हमारी स्थिति है। चाहे जितना घूम आवें हम दुनियामें, हमारी सोनेकी जगह ईश्वर है। निद्राके समय आप कहाँ होते हैं—सति सम्पद्यन्ते—ईश्वरमें आकर सो जाते हैं। सेवा एकके उद्देश्यसे। सम्बन्ध सारे-के-सारे एकसे—ईश्वरसे। स्थिति आकर ईश्वरमें और ज्ञान ईश्वरका ही। सब स्थितिमें ईश्वर है। सब भावोंमें ईश्वर है। सब कर्मोंमें ईश्वर है। सब वस्तुओंमें ईश्वर है। ईश्वर ही है—दूसरा कोई नहीं है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

अब यदि कालके चक्रमें पड़ोगे तो! चक्कर काटते रहोगे या तो बड़ी देर लगेगी वहाँ पहुँचनेमें। इसलिए न देरवाला मार्ग अपनाओ और न चक्कर काटनेवाला। दोनोंसे वैराग्य करनेके लिए है यह आठवाँ अध्याय। शुक्ल या उत्तरायणमार्गसे जानेका वर्णन करनेके लिए नहीं है। बल्कि दोनोंसे वैराग्य करके अभी-अभी परमात्माकी प्राप्ति करनेके लिए है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

•

प्रवचन : ९

हमारे शास्त्र, पुराण, उपनिषद, गीता सब ऐसे भगवान्‌का प्रतिपादन करते हैं जो न हमसे दूर है, न जिसके मिलनेमें देर है, और न हमसे दूसरा है। यह संसारके सब ईश्वरवादी मजहबोंसे अलग है। ईश्वरसे मिलनेमें देर नहीं, ईश्वर हमसे दूर नहीं—ईश्वर दूसरा नहीं।

यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।

हम सब जिसके भीतर हैं, माने उसका इतना बड़ा पेट है कि उसके पेटमें हम समाये हुए हैं, उसका इतना बड़ा दिल है कि हम उसके दिलमें हैं—ऐसा ईश्वर और **येन सर्वमिदं ततम्**—यह जो कुछ है, सबमें वह—कपड़ेमें सूतकी तरह व्याप्त है, भरपूर है। यही मूर्तिपूजाका मौलिक तत्त्व यहाँ है। जिनका ईश्वर निराकार होता है, नितान्त निराकार, उसमें साकार होनेका सामर्थ्य ही नहीं है। वे लोग मूर्तिको प्रतीक मानकर उसकी पूजा करते हैं। यह प्रतीक-वाली भाषा निराकारवादियोंसे आयी है और हम लोग ईश्वर-को नितान्त निराकार नहीं मानते। जितने आकार हैं, सब ईश्वरके ही आकार हैं, ईश्वर ही सब आकारोंके रूपमें प्रकट है। किसी भी आकारमें हम ईश्वरकी पूजा कर सकते हैं। जितनी

मूर्तियाँ हैं सबकी सब ईश्वरकी मूर्तियाँ हैं—यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। प्रेरक भी वही है—भीतर अन्तर्यामी—यतः प्रवृत्तिर्भूतानां और येन सर्वमिदं ततम्। सबके रूपमें भी वही है। आप मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पूजा कीजिये।

ॐ भूरसि, भूरसि—प्रचलित पूजा आप लोग करवाते हैं। नींव डालना होता है तो भूमिकी पूजा होती है—भूमिके रूपमें परमेश्वरकी ही आराधना है।

जलके रूपमें भगवान्‌की आराधना। अग्निके रूपमें भगवान्‌की आराधना, वायुके रूपमें भगवान्‌की आराधना। सूर्य, चन्द्रमाके रूपमें अपने प्राणोंके रूपमें, अपनी साँसके रूपमें भगवान्‌की आराधना। आकाशके रूपमें भगावन्‌की आराधना। पेड़ पौधेके रूपमें—**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां**—पीपलके रूपमें आराधना। हंस आदि पक्षियोंके रूपमें भगावन्‌की आराधना। गाय आदि पशुओंके रूपमें भगवान्‌की आराधना। मछली, कछुवा, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुरामके रूपमें ईश्वरकी आराधना। यह जो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर साकार हो ही नहीं सकता, उनके सिद्धान्तसे यह वेदशास्त्र-का सिद्धान्त विलक्षण है। सबके रूपमें वही है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

अपने कर्मके द्वारा उसकी आराधना करो। माताके रूपमें, पिताके रूपमें परमेश्वर है। माता, पिता परमेश्वरका प्रतीक नहीं, परमेश्वर रूप है। शिवलिंग जगत्‌के कारणका प्रतीक नहीं स्वयं जगत् कारण परमेश्वर ही है।

शालिग्राम प्रतीक नहीं है। यह प्रतीक पूजा नहीं है। यह साक्षात् परमेश्वरकी पूजा है। माताकी पूजा, पिताकी पूजा, गुरुकी पूजा, ब्राह्मणकी पूजा, विद्वान-की पूजा, वल्लभाचार्य तो

अपने पुत्रोंकी पूजा करते थे। ये साक्षात् भगवान् हैं। परमहंस रामकृष्ण अपनी पत्नीकी पूजा करते थे। ये साक्षात् परमेश्वर हैं। हमारे एक बरसकी कुमारी, दो बरसकी कुमारी, तीन बरसकी कुमारी, पाँच बरसका बटुक, आठ बरसका बटुक, इनकी पूजा होती है।

यह बात मैं बराबर कहता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि आप दूसरे मजहबके जो दर्शन हैं, सिद्धान्त हैं, मत हैं, उनसे प्रभावित होकर आप भारतीय धर्मको, वैदिक धर्मको, संस्कृतिको वैसी न समझ लें। क्योंकि दूसरी भाषाके माध्यमसे और दूसरी संस्कृतिके विद्वानोंके विचारसे आप प्रभावित होकर जब ईश्वरके बारेमें सोचते हैं—हमारा ईश्वर जैसा है, हमारे वैदिक सिद्धान्तके हिसाबसे ईश्वरकी जैसी मान्यता है, उसको समझना बहुत कठिन हो जाता है। यहाँ भी नितान्त निराकारवादी ईसाई और मुस्लिम संस्कृतिके प्रभावके पश्चात् ही हुए हैं। पहलेके नहीं हैं।

ईसाई, मुसलमान संस्कृतिके पहले तो जैन-संस्कृति है। उसमें मूर्तिपूजा है। बौद्ध-संस्कृतिमें मूर्तिपूजा है। पर वह मूर्तिपूजा पवित्र जीवकी पूजा है। हमारी पूजा परमेश्वरकी पूजा है। बौद्ध और जैन संस्कृतिमें ईश्वरको नहीं मानते। उनके ईश्वर नहीं है। उनके यहाँ जीवात्मा ही पवित्र होकर वीतराग, तीर्थङ्कर होता है।

अब देखो अवतार! एक भक्त रो रहा है। व्याकुल हो रहा है। आपके दर्शनके बिना हमारी आँखें नहीं मानती हैं। हमारा दिल फट रहा है। एक-एक क्षण भारी हो रहा है। हे प्रभो! मुझे दर्शन दो, दर्शन दो। भगवान्को कहींसे आना नहीं पड़ता। वे वैकुण्ठसे चलकर नहीं आते। वह पद्धति दूसरी है। वे निराकारसे साकार नहीं होते। वे तो सर्वरूपमें सर्वत्र हैं ही। वहीं

अपने ऊपर जो परदा पड़ता है उसको हटा देते हैं। परदा भगवान्‌पर नहीं है। परदा जीवकी बुद्धिपर है। हमारी समझपर परदा है। यह हमारा ईश्वर है। ईश्वर बनाना नहीं है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

ध्यान-पूजा करके निर्मित नहीं करना है। वह है, **सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः**। अर्जुनकी जब आँख खुल गयी तब उसने देखा कि सब परमेश्वर है। **अमृतं चैव मृत्युं च**—मूर्तिपूजाको समझनेके लिए, अवतारको समझनेके लिए—क्या सूर, तुलसीकी ओर एक बार ध्यान देना होगा। भगवान् साकार उनके सामने प्रकट हुए। मीराके' भगवान् प्रतीकात्मक नहीं थे। गुरु चेलेकी पूजा करता है यह बात मालूम नहीं होगी। जब दीक्षा होती है—जो विधि-पूर्वक दीक्षा होती है उसमें दीक्षा देनेके बाद जब गुरु कहता है कि जो मेरी आत्मा है वही तुम्हारी आत्मा है। हमारे अन्दर जो परमेश्वर है, वही तुम्हारे अन्दर है। तुम भावनासे गुरुके भीतर परमेश्वर देखते हो और मैं अनुभवसे शिष्य, तुम्हारे भीतर परमेश्वरको देखता हूँ। गुरु कहता है तुम भावना करते हो, विश्वास करते हो कि गुरुमें परमेश्वर होता है और मैं अनुभवसे देख रहा हूँ कि तुम स्वयं परमेश्वर हो। चन्दन लगाते हैं, फूल चढ़ाते हैं, सिरपर हाथ रखते हैं। कहनेका अभिप्राय यह है कि **येन सर्वमिदं ततम्**। इस भगवान्‌को आप ज्ञानकी दृष्टिसे देख सकते हैं। अनन्य भक्तिकी दृष्टिसे देख सकते हैं।

हमारे जो प्राचीन ग्रन्थ हैं उनको समझनेके लिए शास्त्र-चक्षुकी आवश्यकता होती है। शास्त्रोंकी आँखसे हम उसको देख सकते हैं, अपने मनसे नहीं। पुस्तक पढी और अपने मनसे कल्पना कर ली। आजकलके जो विचारोंके, आचारोंके और विद्वानोंके उपदेशके संस्कार हैं, वे हमारे मनमें भरे हुए हैं। उन

संस्कारोंके प्रभावमें आकर हम अपनी ओरसे शास्त्रोंको देखना चाहते हैं। हम लोग जिस बोलीमें बातचीत करते हैं, दो हजार, पाँच हजार, दस हजार बरस पहले, उस बोलीमें बातचीत नहीं की जाती थी। तबकी बोली कुछ अलग होती थी। मीमांसा-शास्त्रके अनुसार इस वाक्यका अर्थ कैसे करना चाहिए यह सीखना पड़ता है। व्याकरणके लिए काव्य, कोश, मीमांसा चाहिए। उसको समझना पड़ता है। कहाँ अविधावृत्ति होती है, कहाँ व्यञ्जना-वृत्ति होती है, कहाँ लक्षणावृत्ति होती है, इसे समझना पड़ता है। कोई बोलता है—अभी दो मिनटमें यह काम पूरा होता है, उसमें बीस मिनट लगता है। इस वृत्तिको नहीं समझनेके कारण कई बार काफी परेशानी खड़ी हो जाती है। मैं पूछता हूँ कि क्यों भाई! तुमने तो दो मिनट कहा था तो बोलते हैं—महाराज, लक्षणावृत्तिसे कहा था। अर्थात् दो मिनट सहित और भी कुछ मिनट। जैसे आप बोलते हैं दो ग्रास खालो। तो क्या खानेवाले-को आप दो ग्रास ही खिलाना चाहते हैं। खिलाना तो चाहते हैं पेटभर पर—बोलते हैं, दो कौर। इस तरह पुरानी जो भाषा है उसको समझनेकी एक प्रक्रिया होती है। हमारे वेद, शास्त्रमें जो भाषा है, उसको थोड़े दिनोंके बाद तो समझना बहुत मुश्किल हो जायेगा। पहले आपके मकान बने होंगे—तो पुराने लोगोंने वास्तु-पूजा की होगी। मकानको देवता मानकर एक वास्तुका अधिष्ठात्री देवता होता है उसकी पूजा होती है। अब नहीं करते होंगे। मकानमें एक देवता है जो मकानको टूटनेसे, फूटनेसे, चोरसे रक्षा करनेका काम करता है—वास्तु देवता। उसकी प्रतिष्ठा होती है। एक ग्राम देवता हुआ करते थे। सारे गाँवकी रक्षा करनेवाले होते थे। उनके लिए गाँवके बाहर बलि भी चढ़ाते थे। वह भूल गये होंगे आप लोग। ऐसे जितने भी विभाग होते हैं उसके एक-एक देवता होते हैं।

हमारे बचपनमें तो ऐसा विश्वास था। एक पेड़ था, उसके पास जाकर कहते थे—हे वृक्षके देवता! हम तुम्हें भोजनके लिए निमन्त्रित करते हैं। आज हमारे घरमें आना और जब हम भोजन करने वैठें तो हमारे अन्दर वैठकर भोजन करना। वे भोजन करते तो अत्यधिक भोजन कर लेते। आजकल लोग इस बातको मानेंगे ही नहीं। हम अन्धविश्वासकी बात आपको सुना रहे हैं। हमको जयदयाल डालमियाने बताया कि उनको एक मन्त्र बचपनमें किसीने बताया था तो उससे वे बिच्छूका विष उतारा करते थे। अब भी होते हैं बिच्छूका विष उतारनेवाले। जब १७-१८ वर्षके हुए तो उनके मनमें आया कि जिसको बिच्छू डंक मारता है—उसको विश्वास हो जाता होगा कि इन्होंने झाड़ दिया और बिच्छूका विष उतर गया। हमने एक बार मन्त्र नहीं पढ़ा और ऐसे ही बिच्छूका विष उतारनेकी कोशिश की तो नहीं उतरा। एकके नहीं उतरा, दोके नहीं उतरा, तीनके नहीं उतरा तब मैंने सोचा कि विश्वाससे ही नहीं उतरता है, मन्त्रसे उतरता है। फिर जब मन्त्रका प्रयोग किया तो मन्त्रसे भी नहीं उतरा। क्या हो गया? यह हो गया कि अविश्वास करनेसे जो मन्त्रकी शक्ति है, उसका लोप हो गया। वह मन्त्रका देवता चला गया।

यह हम अन्धविश्वासकी बात आपको सुनाते हैं। हम स्वयं किसीको जब चमक पड़ती थी तो मन्त्र पढ़कर-एक लकड़ी होती थी—चिरी हुई, वह अपने आप चलकर सट जाया करती थी। मन्त्रका देवता काम करता था। जब हम बड़े हुए तो हमारा विश्वास उठ गया। विश्वास उठ गया तो वह लकड़ीका चलना बन्द हो गया। यह आपको इसलिए सुनाते हैं कि आपके घरमें कभी शहद गिरती हो या कभी फूल बरसते हों या कभी कोई चीज आजाती हो तो वह परमेश्वर नहीं आते। महात्मा नहीं आता—कोई भूत, प्रेत, छोटे मोटे देवता, निम्न कोटिकी शक्तियाँ आती हैं। यह मैं इसलिए

सुना रहा हूँ कि जैसे यह फूल है तो हमारी आँख देखती है और हमारी आँख है तो फूल दिखता है। हमारी आँख अध्यात्म है और फूल अधिभूत है। परन्तु इसके बीचमें कोई देवता है, जिसका ज्ञान हमको नहीं है। अधिदैवतका ज्ञान नहीं होता। अध्यात्ममें-से अधिभूत सारा-का-सारा निकलता है। यह अध्यात्म-वादियोंका दृष्टिकोण है। अधिभूतमें-से अध्यात्म निकलता है—यह वैज्ञानिक लोगोंका दृष्टिकोण है। वेदान्तियोंका दृष्टिकोण इस सम्बन्धमें है कि मनमें-से सृष्टि निकलती है और सृष्टिसे मन बनता है। ये दोनों परस्पर सम्बन्धित हैं। किससे कौन बना है यह अनिर्वचनीय है। मनसे विश्व बना है या विश्वसे मन बना है—पहले पञ्चभूत बने कि पहले मन बना ? अपने ओरसे देखेंगे तो पहले मन बना। संसारकी ओरसे देखेंगे तो संसारसे पहले—पञ्चभूतसे पहले मन बना। यह अनिर्वचनीय होता है।

आपको संस्कार रहे केवल इसलिए सुनाते हैं। इनके बीचमें एक दैवत पक्ष है—अधिदेवता। उसको आजकलके लोग नहीं जानते। प्राचीन शास्त्रोंकी भाषामें जो वर्णन इनका है, उसमें देवताओंका वर्णन मिलता है। इन्द्र देवता है, अग्नि देवता है, वायु देवता है—सबमें परमेश्वर होनेपर भी, देवताओंका एक विभाग है। आप सरकारको तो जानते हैं न ! कितने मिनिस्टर होते हैं उसमें। सबका नाम सरकार है। एक मिनिस्टरका नाम सरकार नहीं होता। सब मिनिस्टरोंका नाम सरकार होता है। परन्तु किसीके जिम्मे कोई विभाग होता है, किसीके जिम्मे कोई विभाग होता है। सबका नाम परमेश्वर होनेपर भी अपने-अपने विभागके देवता होते हैं।

यह रूप सफेद क्यों दीखता है। दो फूल हैं। एक सफेद दीखता है, एक लाल दीखता है। क्यों ? हमारी आँख एक ही

हैं—एकको लाल, एकको सफेद क्यों देख रही है? इसमें सूर्यकी जो किरणें हैं वे इस ढंगसे दोनोंपर पड़ती हैं—इसके कारण एक फूल सफेद और एक लाल मालूम पड़ता है। हम आँख और फूलको तो जानते हैं, पर सूर्यको भूल जाते हैं। ऐसे ही हमारे कानमें भी देवता हैं—नाकमें भी होते हैं, जीभमें भी होते हैं, हाथमें भी होते हैं, पाँवमें भी होते हैं और बहुत सोच-विचारकर अनुभव करके उनका निश्चय किया हुआ है। इसलिए पितरोंकी पूजासे वंश बढ़ता है, देवताओंकी पूजासे इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ती है। ऋषियोंकी पूजासे ज्ञान बढ़ता है। परमेश्वरकी पूजासे समत्व, शान्तिकी प्राप्ति होती है। जब आप इस देवता पक्षको ठीक-ठीक समझ लेंगे तो गीतामें जो अगली बात कही गयी है उसको समझनेमें आपको मदद मिलेगी।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्रप्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

यहाँ है देवताका वर्णन। दो तरहकी गति होती है। जबतक कर्म है तबतक वासना है। वासनासे कर्म होता है। कर्मसे वासना होती है और कर्म वासना दोनों मिलकर भोग बनाते हैं। हमारी वासनाके अनुसार जहाँ भोग मिलता है, वहाँ

जाना पड़ता है। सिनेमा देखने सिनेमा हॉलमें जाते हैं। भोजन करनेके लिए होटलमें जाते हैं। क्यों? दो जगह क्यों जाते हैं? सिनेमा देखनेकी वासना है, आप उसका पैसा देते हैं; वहाँ जाकर देखते हैं। भोजनकी वासना है तो भोजनका पैसा देते हैं, होटलमें जाकर भोजन करते हैं। वासनाके कारण ही तो दो जगह जाते हैं न! शरीरका उतना महत्त्व नहीं है, जितना महत्त्व मनका होता है। अभी आने-जानेकी वासना है—तो एक शुक्लमार्ग है, एक कृष्णमार्ग है। अग्नि देवता है, ज्योति देवता है, अहर् देवता है। इनका राज्य होता है। आप जानते हैं यह जो बिजली जलती है, यह बिना रङ्गकी रोशनी नहीं होती और अग्निमें भी—जिस लड़कीमें, जिस कोयलेमें आप आग जलाते हैं उसका धूँआ मिश्रित रहता है। वह शुद्ध रोशनी नहीं रहती है। सूर्यकी रोशनीमें कोई रङ्ग नहीं होता। रोशनी है, रङ्ग नहीं। वह सूर्यकी रोशनी। अग्निका क्षेत्र एक है। उसमें कुछ मलिनता है। उसके पश्चात् ज्योतिका—भौगोलिक क्षेत्र है—आकाशमें एक क्षेत्र है, दिशामें एक क्षेत्र है, उसका देवता ज्योति है। उसके आगे अहर् देवताका क्षेत्र है। फिर शुक्ल देवताका क्षेत्र है। जैसे कोई अग्निमें जला, ज्योतिसे एक हुआ। दिनके देवताके पास गया पर दिन तो बारह घण्टेका होता है। फिर पन्द्रह दिनवाले देवताके क्षेत्रमें गया। फिर उत्तरायणवाले क्षेत्रके देवतामें गया। एकसे दूसरा अत्यन्त निर्मल उज्ज्वल होता है और धीरे-धीरे वह ब्रह्मलोकमें पहुँचता है। ब्रह्मलोकमें जानेपर भी **आब्रह्मभुवनाल्लोका। पुनरावर्तिनोऽर्जुन।** यदि संसारकी वासना नहीं होगी तो लौटना नहीं पड़ेगा। ब्रह्मलोकसे वासना होनेपर लौट भी सकते हैं और निर्वासन होनेपर ब्रह्माके साथ मुक्त भी हो सकते हैं। जब ब्रह्माकी मुक्ति होगी तब आपकी भी मुक्ति हो जावेगी। अब यह गतिका बाध है।

श्रीमद्भागवतमें इसका वर्णन है। एक व्यक्ति है, वह जीवन-भर ध्यान करता रहा। मरनेके समय उसने सिद्धासन किया और एड़ी लगायी अपनी सिवनीमें और अपने प्राणोंको ऊपर खींचा और खींचते-खींचते, धीरे-धीरे, लाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध-आज्ञा, सहस्रारके क्रमसे ऊपर उठा और सिरके वाहर निकल गया और फिर वह अग्नि, ज्योति, अहर् आदि क्रमसे ब्रह्मलोकमें गया। सैर सपाटा करते हुए, मुक्त होनेकी रुचि थी। पर जब वह ब्रह्मलोकमें गया तो देखने लगा—वहाँ जरा नहीं, बुढ़ापा नहीं, वहाँ मृत्यु नहीं है। वहाँ वियोग नहों हैं। वहाँ इन्द्रियोंमें असमर्थता नहीं है, सब देखा उसने। देखते-देखते एक खिड़कीके पास गया। भागवतमें यह वर्णन है। वह क्या देख रहा है ? बोले—मर्त्यलोक। जरा दूरबीन लाओ—देखें यहाँसे मर्त्यलोक कैसा दीखता है ? उसने देखा मर्त्यलोकमें संसारके लोग बड़े दुःखी। वह तो दुःखको ही सुख माने हुए हैं। अज्ञानको ही ज्ञान मानते हैं। जन्मने-मरनेको ही वहुत बड़ी चीज मानते। वहाँसे दीखने लगा। उसके मनमें बड़ी पीड़ा हुई। वह दुःखी हो गया। दूसरे स्कन्धके दूसरे अध्यायमें यह प्रसङ्ग है।

यच्चित्ततोऽदः कृपयानिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात्।

श्रीमद्भा० २-२-२७

वहाँसे देखा लोग दुःखी हो रहे हैं। लोग मर रहे हैं, लोग छटपटा रहे हैं। वहाँ से देखा—उसने कहा हमको ब्रह्मलोक नहीं चाहिए। हम मुक्त नहीं होना चाहते हैं। तब क्या चाहते हो ? हम धरतीमें जाकर सबका दुःख दूर करना चाहते हैं। वह ब्रह्म-लोकसे कूद पड़ा। परन्तु जब धरतीपर आया तो न तो उसके

शरीरका व्यक्तित्व था और न तो मनका व्यक्तित्व था। क्योंकि वहाँसे उसने देखी थी सारी धरती। वह आकर धरतीसे एक हो गया। सारी धरती-धरतीमें जितने पशु हैं, पक्षी हैं, वृक्ष हैं—सब मैं हूँ, इस अनुभवमें डूब गया। वहाँसे उठा तो मैं अन्न हूँ—इस अनुभवमें डूब गया। वहाँसे उठा तो मैं तेज हूँ—इस अनुभवमें डूब गया। वहाँसे उठा तो मैं वायु हूँ—इस अनुभवमें डूब गया। उसके बाद—मैं आकाश हूँ—इस अनुभवमें डूब गया। मुक्त होनेके स्थानको प्राप्त करनेके बाद भी वहाँसे दयालु पुरुष आना ही चाहते हैं। भागवतमें ही एक कथा है।

प्रसंगवश कह देता हूँ—रन्तिदेवकी। उनके पास राज्य था। चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनके पास धन था। उनकी प्रजाका पालन-पोषण होता था। उनके खजानेमें बहुत धन था। परन्तु वे कहते थे कि खजानेमें जो है, वह तो प्रजासे कर वसूल करके आया है। तो वह तो प्रजाके हितके लिए है। दुष्टोंको जुर्माना करके आया है, वह भी लोक हितके लिए है दुष्टोंको शिष्ट बनानेके लिए है। वह तो मेरी है नहीं। मैं तो अपने हाथसे परिश्रम करके—अपनी कमाई करके खाऊँगा। यह था उनका संकल्प। अड़तालीस दिन तक भोजन नहीं मिला। जब आदमी कोई नियम लेता है, व्रत लेता है तब उसको कष्ट सहनेकी भी शक्ति होनी चाहिए। आपने एकादशी की, किसीने मिठाई सामने लाकर रख दिया। हलवा पूरी रख दिया—बोले भाई-एकादशी तो अगले पक्षमें फिर आजायेगी। आज हलवा पूरी खा लें। जो त्यागके लिए तत्पर नहीं, वह किसी व्रतका, नियमका, संकल्पका पालन नहीं कर सकता। व्रतके पालनके लिए तो कष्ट उठाना ही पड़ता है। कष्ट उठाया। बना बनाया भोजन अतिथिको दे दिया। जो बचा-खुचा था वह भी दे दिया। जो पानी बचा था वह भी एक कसाईको दे दिया। पुलकस-कसाई और भगवान्से प्रार्थना की—ब्रह्मा,

विष्णु, महेश उसके सामने आये। बोला हमको ब्रह्मा, विष्णु, महेश नहीं चाहिए।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥
—श्रीमद्भा ९.२१.१२

मुझे परा गति नहीं चाहिए—अष्टसिद्धि नहीं चाहिए। हमको मोक्ष नहीं चाहिए—हम चाहते हैं कि हम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करें। भगवान्‌ने कहा—हम पहलेसे मौजूद हैं—तुम क्या करोगे ? बोले—महाराज आप रहते तो हैं, मगर टुकर-टुकर देखते रहते हैं। आप ऐसा कीजिये—मैं आपको भी दुःख देना नहीं चाहता। आप देखते रहिये और प्राणियोंका सुख भी नहीं लेना चाहता। उनके पास जो सुख है उससे वे सुखी रहें और आप देखते रहिये। तब संसारमें जितने प्राणी हैं, उनका सबका दुःख मैं अकेले भोगता रहूँ। सबके हृदयमें रहकर मैं सबका दुःख ले लूँ और संसारके सब जीव अदुःख हो जायँ। यह होता है महात्माओंका चित्त। इसके लिए वे मोक्षका भी तिरस्कार करते हैं।

दूसरी गति होती है—उसको काली गति बोलते हैं—

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।

धूँएँका देवता उठाकर ले जाता है, वह रातके देवताको दे देता है, फिर वह कृष्ण पक्षके देवताको देता है। वह देवता दक्षिणायनको देता है और चन्द्रमामें थोड़ा-सा अन्धकार रहता है। इसलिए अन्धकारके सम्बन्धसे चान्द्रमस् ज्योति माने

मनोज्योतिको हम प्राप्त होते हैं। बुद्धिका पर्यवसान होता है सूर्यमें और मनका पर्यवसान होता है चन्द्रमामें। मनके देवता चन्द्रमा हैं और बुद्धिके देवता सूर्य हैं। **धियो यो नः प्रचोदयात्।** बुद्धिके देवतामें प्रकाशरूप सूर्य और मनके देवता हैं अह्लादरूप चन्द्र। मनके देवता चन्द्रमा कैसे हैं? अन्नसे मन बनता है, परन्तु अन्न बनता है—चन्द्रमाकी रश्मियोंसे जो अमृत बरसता है उससे। अन्नको अन्न बनानेवाला है चन्द्रमा। वही अन्न खानेसे हमारा मन बनता है। इसलिए मनका देवता चन्द्रमा है, मनका प्रेरक चन्द्रमा है। प्यार आह्लाद उसका स्वरूप है। चन्द्रमाकी ज्योति प्राप्त होनेपर वासनाएँ रहती हैं और फिर वासनाओंके कारण संसारमें लौट आना पड़ता है। **शुक्लकृष्णे गती ह्येते।** एक काली गति है और एक शुक्ल—श्वेतगति है। यह हमेशासे होती आयी है। एक मुक्तिका मार्ग है, और एक पुनर्जन्मका। अब इस गतिके बारेमें करना क्या है? एक ऐसा रास्ता बना रहा हूँ जिससे आप कभी गये नहीं। आप गये भी तो याद नहीं। ऐसी हालतमें मेरे वर्णनपर विश्वास करना पड़ेगा। यह मार्ग जाने-आनेके लिए नहीं है। आप नक्शा ले लें और मोटर चलाते हुए इसपर चले जायें। ऐसा नहीं है। यह समझनेके लिए है। इसका उपयोग इसी जीवनमें है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।८.२७

इस रास्तेको सिर्फ समझ लीजिये। सृती माने मार्ग—जिसपर हम सरकते हैं। जैसे सड़क है। लोग पूछते हैं—यह सड़क कहाँ जाती है? बोले सड़क तो कहीं जाती नहीं, पड़ी हुई है। सड़क जाती है, माने क्या? आपने विचार किया होगा? यह है जहत्लक्षणा। वेदान्तमें इसका यह नाम है। जहत्लक्षणा माने आप सड़कको छोड़कर सड़कसे सम्बन्ध रखनेवाले, उसपर

जाने-आनेवाले, चलनेवालोंपर ध्यान दीजिये कि वे सड़कसे कहाँ जाते हैं, कहाँसे आते हैं? बिहारमें तो 'सरक' ही बोलते हैं। जिसपर सब लोग सरकते हैं—आगेको। सरकते हैं—संस्कृत शब्द हो गया—'सृती सरती-सरक। **नैते सृतीपार्थ।**

वासनावान् पुरुषका जाना आना होता है। निर्वासन ब्रह्म-लोकमें जाकर ब्रह्माके साथ मुक्त होता है। अब आप बतावें, आप यहाँ मुक्त हो सकते हैं या नहीं? जब परमेश्वर यहीं है, तब आप जाते-आते रहें, मुक्तिके लिए इसकी जरूरत नहीं। आप कहीं जाकर मुक्त हों इसकी भी जरूरत नहीं। यह पक्का समझिये, यदि आप जानेका संकल्प करेंगे तो जाना पड़ेगा। वासना होगी, जाना पड़ेगा। निर्वासन होंगे—यहीं तत्त्वका इसी जीवनमें साक्षात्कार होगा।

आप इस जन्म-मृत्युके संसारमें रहिये। इस वेद-निर्मित मार्गको समझिये। शास्त्र-दृष्टिसे देखिये। आप इनके द्रष्टा हैं, द्रष्टा ब्रह्म होता है। आप साक्षात् परमात्मा हैं। भागवतमें इसको बहुत स्पष्ट करके बताया है। गीताकी व्याख्या है यह भागवतमें—

आदावन्ते जनानां सद् बहिरन्तः परावरम्।
ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमोज्योतिस्त्वयं स्वयम्॥

—श्रीमद्भागवत ७.१५.५७

वेदकी दृष्टिसे ये दो मार्ग हैं। इन्हें यहीं रहते-रहते शास्त्र-दृष्टिसे जान लीजिये। फिर आप संसारमें मोहित नहीं होंगे। ऐसा करेंगे तो जाने-आनेवाले मार्गमें भटकना नहीं पड़ेगा? बड़ी लम्बी यात्रा नहीं करनी होगी। यात्रा करनेपर जो चीज मिलती है, वह यहीं मौजूद है। यह जो जन है, संसार है—इसके आदिमें, अन्तमें, जो सत् है, आकारके आरोपसे विनिर्मुक्त—जो बाहर-भीतर है, जो कारण, कार्य है, ज्ञान, ज्ञेय, वचन, वाच्य, प्रकाश

है, अन्धकार है वह कौन है ? अयं स्वयं—यह ज्ञानी, तत्त्वज्ञ पुरुष, वह स्वयं ही सब है। उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने आठवें अध्यायका उपसंहार किया। कहते हैं इसका अभिप्राय परलोकमें जाना-आना नहीं है। परलोकमें जाने-आनेका मार्ग बताना नहीं है। जिस कारणसे जाना-आना पड़ता है, उस कारणसे विरक्त होकर आप इन दोनोंको जानिये और अपने आपको जान लीजिये। इसलिए—

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥८.२८

वेदके स्वाध्यायसे जो फल होता है, वेदका स्वाध्याय पूर्ण होनेपर जिस फलकी प्राप्ति होती है। वेदमें जो करनेको कहा गया है—**यज्ञेषु**—वह यज्ञ करनेपर जो फल प्राप्त होता है, वेदमें तपस्याका भी वर्णन है। तपस्यासे क्या नहीं मिलता ? सब कुछ मिलता है। जो तपस्यासे मिलता है, जो दान करनेसे मिलता तब—**इदं विदित्वा तत्सर्वं अत्येति**। यदि आप इस दोनों मार्गके रहस्यको समझ जायँ तो आप दोनोंका अतिक्रमण कर जाते हैं। आपको बार-बार आना-जाना नहीं पड़ेगा। जाकर मुक्त नहीं होना पड़ेगा। **तमेव विद्वान् अमृत इव भवति। इह अमृत भवति।** इसी जीवनमें आप अमृतत्वको प्राप्त कर लेंगे।

किसीको जेलमें बन्द कर दिया—इसीमें घूमो। यह एक गति है। इसमें बार-बार आओ-जाओ। एकको बोल दिया, इस देशसे निकलकर जब दूसरे देशमें चले जाओगे, यहाँसे भाग जाओगे—हवाई जहाजपर चढ़कर, चुपचाप या सूचना देकर, किसी दूसरे

देशमें, तब तुम्हें इससे छुटकारा मिलेगा—स्वतन्त्रता मिलेगी। इस जेलमें तुम स्वतन्त्र हो यह दूसरी बात और इस जेलसे निकलनेके बाद तुमको स्वतन्त्रता मिलेगी वह दूसरी बात। नहीं बाबा, न इस जेलमें रहकर घूमना है और न जेलसे बाहर जाकर स्वतन्त्र होना है। **इदं विदित्वा तत्सर्वं अत्येति।** इस रहस्यको आप जान लो।

यस्यान्तःस्थानिः भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।

जिनके भीतर ये सारे प्राणी हैं, और जो **मया ततमिदं सर्वम्** अद्भुत है यहीं-यहीं—अभी इसी रूपमें—अपने आत्माका, अपना स्वरूप क्या है, इसे जान लो—आप आदि स्थानको प्राप्त करोगे। आदि स्थान क्या होता है? आपने सुना होगा कि किसीने पूछा सृष्टि पहले पहल कहाँ हुई? तो कानपुरके पास एक स्थान है विठूर। वहाँ ले जाकर एकने बताया—यह सृष्टिका आदि स्थान है। किसीने कहा—यहाँ नहीं है। कहाँ है? बोले ऊपरकी ओर है। वैकुण्ठसे सृष्टि प्रारम्भ हुई। ब्रह्मलोकसे शुरू हुई। गोलोकसे हुई। वह बात भी सच्ची है। पर गोलोक क्या है? वैकुण्ठलोक क्या है? ब्रह्मलोक क्या है? उसको भी जानना पड़ता है। वह अपने आप किताब पढ़कर नहीं मालूम पड़ता। उसका अनुभव होता है।

आदि स्थानका अनुभव होता है। आप अपने जाग्रत्की आदि जानते हैं? आप प्रतिदिन जागते हैं सोकर। आपके जागने-की आदि कहाँ है? जहाँ सोते हैं वहीं जागनेकी आदि है। और जहाँ जागना होता है वहीं सोना है। दोनों एक ही स्थानपर है। जहाँ सृष्टि है वहीं प्रलय है। जहाँ प्रलय है, वहीं सृष्टि है। आप अपने मनका आदि देखो—कहाँ है?

स्वप्नान्तं जागृतान्तं च इमौ येनानुपश्यन्ति।

जब आपका स्वप्न टूटता है तो आप उस टूटते हुए स्वप्नको देखते हैं। जब आपके जाग्रत्का अन्त होता है, नींद आने लगती है, तब आप जाग्रत्के अन्तको देखते हैं। सृष्टि, प्रलय कहाँ है? जहाँ जाग्रत्की आदि है, वहाँ सृष्टिकी आदि है। जहाँ जाग्रत्का अन्त है, वहाँ सृष्टिका अन्त है। माने सृष्टिका आदि, अन्त आपमें ही है।

आद्यं परं स्थानमुपैति चाद्यम्।

भूगोल आपको कब मालूम पड़ता है? पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कब मालूम पड़ता है? रात-दिन, पहले-पीछे, कब मालूम पड़ता है? यह माँ-बाप है और यह बेटा-बेटी है, यह कब मालूम पड़ता है? कहाँसे मालूम पड़ता है? किसको मालूम पड़ता है? वह देशका आदि है, वह कालका आदि है। वह द्रव्यका आदि है और जब महावाक्य उसको बताता है कि तुम जब कालके आदि हो, तो तुम्हारी उमर कहाँसे आरम्भ होगी? जब देशके आदि हो तो तुम छोटे-बड़े कैसे? जब तुम वस्तुके आदि हो तो वस्तुके अत्यन्ताभावके भी आदि हो। तुममें यह वस्तु कहाँसे आगयी? साक्षात् परब्रह्म परमात्मा होनेका अर्थ यह नहीं होता कि आप समाधि लगाकर बन्द कमरेमें बैठ जायँ। हिमालयमें भाग जायँ। वैकुण्ठमें उड़ जायँ। मुक्त होनेका अर्थ इस धरतीको छोड़कर ऊपर उड़ना नहीं। कहीं कोनेमें भागना नहीं। कहीं भीतर घुसकर छिपना नहीं। मुक्त होनेका अर्थ है—

सर्वथा वर्तमाननोऽपि स योगी मयि वर्तते।

यह श्लोक आपने गीतामें पढ़ा। सर्वथाका दो बार प्रयोग आया है। **सर्वथा वर्तमानोऽपि**—हँसते, खेलते काम करते, युद्ध भूमिमें तीर चलाते हुए, खेती करते हुए, व्यापार करते हुए,

समाजकी सेवा करते हुए। लोकल्याण करते हुए आत्मकल्याण कीजिये। चाहे जैसे हो—गीताके वेदान्तका वैलक्षण्य देखिये। वेदमें यह बात बतायी गयी—यदि आप यज्ञ-याग आदि करेंगे, स्वर्ग-कामनासे नहीं, पशु-कामनासे नहीं, धन-कामनासे नहीं, निष्काम होकर तो तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा। परमात्माकी प्राप्ति होगी। गीताने एक अपूर्व बात कही, केवल यज्ञयाग नहीं, आप लौकिक कर्म भी करो परन्तु लौकिक कर्म आप शुद्ध भावसे करो। शास्त्रोक्त रीतिसे करो। इससे भी आपका अन्तःकरण शुद्ध होगा। तत्त्वज्ञान होगा।

जहाँ उपनिषदोंने इस बातपर जोर दिया कि तत्त्वज्ञान होनेके पश्चात् आपको निवृत्ति-परायण संन्यासी होकर रहना चाहिए। वहाँ गीताने कहा कि तत्त्वज्ञान होनेके बाद आप युद्ध भी कर सकते हैं। आप चाहें तो दत्तात्रेयकी तरह रहें। चाहें तो शुकदेवकी तरह रहें। चाहें तो वसिष्ठकी तरह रहें। जनककी तरह रहें। कृष्णकी तरह रहें। अश्वपतिकी तरह रहें। रामकी तरह रहें। तत्त्वज्ञान होनेके पश्चात् संन्यासी होकर रहना ही आवश्यक नहीं है। आप किसी स्थितिमें रह सकते हैं। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए यज्ञ-यागादि कर्म ही आवश्यक नहीं हैं। आप अपने लौकिक कर्म करते हुए भी अन्तःकरणको शुद्ध कर सकते हैं।

प्रत्येक ग्रन्थमें एक अपूर्वता होती है, माने जो पहले ग्रन्थोंमें बात नहीं कही गयी, उसे जाहिर करनेके लिए प्रत्येक ग्रन्थ होता है। उपक्रम, उपसंहारकी एकता, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति इन छः बातोंसे ग्रन्थके तात्पर्यका निर्णय होता है। जो बात प्राचीन ग्रन्थोंमें ही स्पष्ट कह दी गयी है, उसको दुहरानेके लिए गीता-निर्माण करनेकी कोई प्रयोजनीयता नहीं थी। एक ऐसी बात कहें, जो है तो पुराने ग्रन्थोंमें, वेदोंमें भी है, उपनिषदोंमें

भी है, शास्त्रोंमें है परन्तु आज साफ-साफ मालूम नहीं पड़ती है। उसको साफ-साफ मालूम करानेके लिए गीता बोली गयी और गीताकी ये दो विशेषताएँ आप देख लें। यह अरण्यमें, वनमें, पहाड़में, गंगाकिनारे बैठकर या एक त्यागी, विरक्त जिज्ञासुके लिए नहीं बोली गयी। युद्धभूमिमें, अपने स्वधर्म-पालन करनेके लिए उद्यत किन्तु उसमें प्रतिबन्ध आजानेके कारण, जब अर्जुन युद्धसे विमुख हुआ, तो 'अपने कर्तव्यपालनके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करे' —यह उपदेश करनेके लिए और यह तत्त्वज्ञान होनेपर फिर युद्धभूमिमें—'करो युद्ध'—मा मनुस्मर युद्ध च।

अर्जुनने अन्तमें कहा—करिष्ये वचनं तव। आपकी आज्ञा स्वीकार है।

यत्र योगेश्वरः कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥१८.७८

यह देखो गीताका फल क्या है? यह नहीं है कि त्याग है, समाधि है, हिमालय है, वैकुण्ठ है, गोलोक है। इसका फल है— तत्र श्री—लक्ष्मी, विजय, अचल सम्पत्ति, अडिग नीति। यह गीताकी अपूर्वता है।

आप लोगोंने जो इतना प्रेम दिया—इतने प्रेमसे सुना, आपका प्रेम, आपकी जिज्ञासा हमारे हृदयमें बैठकर बोलती है। आपका बोलना है, आपका सुनना है—हमको आपने इसका निमित्त बनाया। इसके लिए हम आपके बहुत-बहुत कृतज्ञ हैं— आभारी हैं—आपने हमको इस उत्तम कर्मका आश्रय बनाया और यह प्रवचन सम्पन्न हुआ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

●

